प्रश्न 522—भक्ति एवं भोग क्या अलग-अलग वस्तुएँ हैं?

Question 522—Are devotional service (*bhoga*) and sense gratification (*bhoga*) different things?

उत्तर—अवश्य ही। भक्ति एवं भोग एक वस्तु नहीं हैं।

Answer—Of course. Devotional service (*bhakti*) and sense gratification (*bhoga*) are not the same thing.

जहाँपर भक्ति है, वहाँपर भोग नहीं है।

Where there is devotional service (*bhakti*), there is no sense gratification (*bhoga*)

जहाँपर भोग है, वहाँपर भक्ति नहीं है।

Where there is sense gratification (*bhoga*), there is no devotional service (*bhakti*).

भोक्ताभिमानसे भोग होता है तथा भगवत्सेवक-अभिमानसे भक्ति होती है।

bhoktābhimānase bhoga hotā hai tathā bhagavatsevaka-abhimānase bhakti hotī hai.

The false ego being the enjoyer (*bhoktā-abhimāna*) leads to sense gratification (*bhoga*) and the true ego being the servant of Bhagavān (*bhagavat-sevaka-abhimāna*) leads to devotional service (*bhakti*).

भोग अन्धकार-स्वरूप तथा भक्ति प्रकाशमयी है।

Sense gratification is like darkness and devotional service is effulgent.

भोग—निजेन्द्रियतर्पणमय तथा भक्ति—कृष्णसुखविधानमयी है।

Sense gratification (*bhoga*) is full of the endeavors to satisfy one's own senses and devotional service (*bhakti*) is full of the endeavors to arrange for Śrī Kṛṣṇa's satisfaction.

जब हम भोगोंकी ओर जाते हैं, तब शोक, मोह तथा भय हमें घेर लेते हैं।

When we turn towards sense enjoyment (*bhoga*), then sorrow, attachment and fear surround us.

तब अनित्य वस्तुमें आसक्त होनेका परिणाम भगवान हमें समझा देते हैं।

Then Bhagavān explains to us the consequences of getting attached to temporary objects.

अतः सतर्क होकर भगवानका भजन करना ही बुद्धिमानका कार्य है।

Therefore, rendering devotional service to Bhagavān while being alert is the duty of an intelligent person.

भोग तो दुःखोंका रास्ता है। किन्तु भक्ति सुख प्राप्तिका उपाय है।

Sense gratification is the path to sorrows. But devotional service (*bhakti*) is the way to attain happiness.

प्रश्न 523—भक्तका दर्शन कैसा होता है?

Question 523—What is the vision of a devotee like?

उत्तर—भक्त समस्त वस्तुओंको भगवानकी सेवाका उपकरण मानते हैं।

Answer: Devotees consider all things as instruments for serving God.

भोग्य-दर्शनके स्थानपर सेव्यदर्शन होनेपर सेव्यके उपकरण भी हमारे लिए सेव्य हैं—उनका ऐसा विचार होता है।

हरिकथा श्रवण, कीर्तन तथा स्मरणमें नैरन्तर्य न रहनेपर भोग्यविचार हमें ग्रास कर लेगा। यदि हम प्रजल्पोंमें मग्न हो जायँ—व्यर्थकी बातोंमें प्रमत्त हो जायँ, तो सत्सङ्ग तथा भगवानकी सेवाका विचार खो बैठेंगे, ग्रामवास कर बैठेंगे तथा नाना प्रकारकी असुविधाओंमें पड़ जायेंगे। हरिकथा श्रवण-कीर्तन ही साधन तथा साध्य है। हमने कितने भाग्यके फलसे मनुष्यजन्म पाया है। कितने भाग्यके फलसे गुरुकृष्णकी कृपासे भगवानकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त किया है। यदि हम प्रजल्पोंमें ही समय बिता दें, तो यह सौभाग्यका अनादर करना हो जाता है। अतः सब समय हरिकथा आलोचना तथा हरि सम्बन्धीय विषयोंका अनुशीलन करना ही कर्तव्य है। इसीके द्वारा ही जीव भक्त हो सकता है। सुदर्शन प्राप्तकर कुदर्शन-मांसदर्शन या भोग्यदर्शनसे बचकर सुखी हो सकते हैं।

प्रश्न 525—श्रेयः एवं प्रेयः क्या एक ही वस्तु हैं? (Page 30) * [KP]

Question 525—Are *śreyaḥ* and *preyaḥ* the same thing? (Page 30)* [KP]

उत्तर—कभी भी नहीं। जिससे हमारा वास्तविक (नित्य) कल्याण होता है, वही श्रेयः है।

Answer—Never. That which brings us real or eternal auspiciousness is *śreyaḥ*.

हमें जो अच्छा लगता है, वही प्रेयः है तथा जिससे हमारा भला होता है, वही श्रेयः है।

What we like is *preyaḥ* and what does good for us is *śreyaḥ.*

इन दोनों के बीच स्वतंत्रता की स्थिति है।

One is free to choose between these two.

स्वतंत्रता से ही दोनों प्रकार की विचारधाराओं का उदय होता है।

Both ideologies arise from independence.

एक प्रकार का विचार—श्रेयः है तथा दूसरे प्रकार का विचार—प्रेयः है।

One type of thought is *śreyaḥ* and the other is *preyaḥ.*

जहाँ पर श्रेयः एवं प्रेयः एक हो जाते हैं, अर्थात् भगवान की सेवा ही प्रीति की वस्तु हो जाती है, वहाँ पर सबकुछ ठीक है।

Ultimate fulfillment and success are attained when *śreyaḥ* and *preyaḥ* converge; that is, when loving devotional service to Bhagavān becomes the object of love.

किन्तु ऐसा न करके अर्थात् श्रेयः को त्यागकर जब हम प्रेयः में ही व्यस्त हो जाते हैं, तब हमें असुविधाओं में पड़ना पड़ता है।

We find ourselves in difficulty when, instead of doing this, we abandon the pursuit of ultimate good (*śreyaḥ*) and become engrossed in the pursuit of immediate pleasure (*preyaḥ*).

जहाँ पर श्रेयः एवं प्रेयः एक हो गये हैं, वहाँ पर कृष्णानुशीलन के अतिरिक्त अन्य कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

When *śreyaḥ* and *preyaḥ* become one, no activity is possible apart from that involved in cultivating Kṛṣṇa consciousness (*kṛṣṇa-anuśīlana*).

मापारानी (मापने की वृत्ति अर्थात् मायारानी) के अधीन जो अपने सुख की चेष्टा है, उसमें सर्वनाशकर प्रेयः का प्रलोभन है। उसमें श्रेयः का कोई विचार ही नहीं है।

The illusory potency of Śrī Kṛṣṇa, who is the queen or controller of the material world, manifests the tendency to measure in the bound living entities. Under the influence of this Māyārāṇī, they pursue their own happiness. This leads to the temptation of *preyaḥ*, and the end result is total ruination. This is what happens when there is no consideration of *śreyaḥ*.

जहाँ पर निष्कपट रूप से भगवान की सेवा है, वहाँ पर भगवान को भी आनन्द होता है तथा हमें भी सेवानन्द की प्राप्ति रूप श्रेयः प्राप्त होता है।

When we practice sincere, selfless devotional service to Bhagavān without duplicity, Bhagavān is happy, and we attain the ultimate good (*śreyaḥ*) in the form of bliss derived from loving devotional service (*sevānanda*).

श्रेयः का त्यागकर प्रेयः की ओर धावित होने पर ही हम असुर हो पड़ते हैं।

When we abandon *śreyaḥ* and rush towards *preyaḥ*, we become demonic.

उस समय हम भगवान के सुख की चेष्टा से उदासीन होकर अपने इन्द्रियतर्पण में ही प्रमत्त हो जाते हैं।

At that time, due to indifference towards Bhagavān, we become absorbed in gratifying our senses. [At that time, we become indifferent to the effort of

pleasing Bhagavān and instead become absorbed in gratifying our senses.]

जहाँ पर श्रेयः ही प्रेयः होता है, वहाँ पर भगवान की सेवा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी कर्त्तव्य के रूप में परिगणित नहीं होता।

When *śreyaḥ* and *preyaḥ* are the same due to the influence of loving devotional service to Bhagavān, nothing other than such service is counted as a prescribed duty.

जो श्रेयः के विचार को ग्रहण करते हैं, वे कर्मफल के भोग को भगवान की कृपा जानकर उसका भोग करते-करते तन-मन-वचन से भगवान के चरणकमलों में शरणागत रहते हैं।

Those who embrace *śreyaḥ* recognize that the enjoyment of the fruits of their past actions is Bhagavān's mercy, and they remain surrendered to His lotus feet by body, mind, and words.

वे कर्मफल के भोग से मुक्त होने की प्रार्थना न कर अहैतुकी सेवा की ही प्रार्थना करते हैं।

They do not pray for freedom from the enjoyment of the fruits of their past actions (*karma-phala*), but for unmotivated service.

ऐसे श्रेयः के आश्रयकारी व्यक्ति ही भगवान के चरणकमलों को प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

Only those who take shelter of such *śreyaḥ* are qualified to attain the lotus feet of the Lord.

प्रेयः के मार्ग में मृत्यु (संसार) को जय नहीं किया जा सकता।

On the path of *preyaḥ*, death (*saṁsāra*) cannot be conquered.

श्रेयः का विचार ग्रहण करने पर ही मृत्यु को जय किया जा सकता है।

Death can only be conquered by embracing *śreyaḥ*.

जो निरन्तर भगवान की सेवा करते हैं एवं दूसरों को भगवान की सेवा में लगाते हैं, वे ही वास्तविक साधु हैं।

Those who continuously serve Bhagavān and engage others in His service are true saintly persons.

परन्तु जो ऐसा न कर, अन्य उपदेश प्रदान करते हैं, उनका संग ही दुःसंग है।

Those who do not do this and who give instructions to others are indeed bad association.

जो प्रेयः की बात कहकर हमारे मन का हरण करते हैं, उनके संग को दुःसंग जानकर दृढभाव से त्याग करना कर्त्तव्य है, अन्यथा विपत्ति में पड़ना पड़ेगा।

Those who talk about *preyaḥ*, and in this way divert our mind, should be regarded as bad association. We will face difficulty if they are not carefully avoided;

उस समय हमें सर्वनाशकर संसार ही अच्छा लगेगा तथा हम प्रेयःपन्थी हो जायेंगे।

At that time, we will be drawn to the all-destructive, imminent cycle of birth and death, ultimately becoming *preyaḥ-panthī* (those on the path of *preyaḥ*).

प्रश्न 526—भक्त कौन हैं और अभक्त कौन हैं? (Page 31) * [KP]

Question 526—Who are devotees, and who are non-devotees? (Page 31) * [KP]

उत्तर—जो भगवान श्रीहरि की सेवा करते हैं, भगवत्सेवा के अतिरिक्त जिनका और कोई कार्य नहीं है, भगवान का कार्य ही जिनका अपना कार्य है, वे ही भक्त हैं।

Answer—Those who serve Bhagavān Śrī Hari, who have no work apart from His devotional service, and for whom the work of Bhagavān is their own work, are devotees.

वे भगवान को छोड़कर और किसी को भी नहीं जानते हैं।

They do not know anyone except Bhagavān.

चेतनधर्मविशिष्ट भक्तियुक्त सज्जनगण ही भगवान श्रीहरि की उपासना करते हैं।

Only saintly persons who have devotion and who adhere to their blissful, transcendental constitutional nature (*cetana-dharma*) worship Bhagavān Śrī Hari.

जहाँ चेतन का धर्म या क्रिया (भगवत्सेवा) लक्षित नहीं होती है—वही अचेतनधर्म है।

Acetana-dharma (temporary worldly nature) is present wherever *cetana-dharma (bhagavat-sevā* or the service to Bhagavān*)* is absent.

भक्तिहीन व्यक्ति ही अचेतन, जड़प्राय, अन्याभिलाषी, कर्मी या ज्ञानीब्रुव हैं।

A person devoid of devotion for Śrī Kṛṣṇa is insentient (*acetana*), like dull matter (*jaḍa-prāya*). He is *anya-abhilāṣī* (one who has desires other than to serve Śrī Śrī Rādhā-Kṛṣṇa). He may be a *karmī* (fruitive worker) or a *jñānī-bruva* (so-called knowledgeable person).

कर्मी, ज्ञानी, योगी, तपस्वी आदि अभक्त—भक्तिहीन हैं।

Fruitive workers (*karmīs*), mental speculators or philosophers (*jñānīs*), mystics (*yogīs*), and ascetics (*tapasvīs*) are all devoid of devotion (*bhakti*).

वे सभी अपने-अपने स्वार्थ को लेकर ही व्यस्त हैं।

They are all busy with their own selfish interests.

शास्त्र कहते हैं—जो भगवत्सेवा नहीं करते हैं, वे जीवित रहते हुए भी मृत हैं।

The scriptures say that those who do not serve Bhagavān are dead, even while they are alive.

भगवत्सेवा नहीं करने पर भोग का विचार आकर हमें विपत्ति में डाल देगा—हमें माया का नौकर बना देगा।

If we do not render loving devotional service to Bhagavān, then thoughts of worldly enjoyment and sense gratification (*bhoga*) will arise and put us in trouble. Such thoughts will make us servants of *māyā* (illusory potency of Lord Kṛṣṇa).

24 घण्टों में से 24 घण्टे ही भगवत्सेवा का विचार नहीं रहने पर माया आकर ग्रास करेगी—मानव अचेतन हो जायेगा।

If a human being does not think about devotional service to Bhagavān twenty-four hours a day, the illusory potency of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa will eventually overpower him, leading to unconsciousness or insentience.

सभी वस्तुओं में भगवत्सेवा का सम्बन्ध नहीं देखने के कारण उन समस्त वस्तुओं के भोक्ता या कर्त्ता के अभिमान में जीव विपथगामी हो रहा है।

When a living entity fails to see that all objects in the world are meant for devotional service to Bhagavān Śrī Kṛṣṇa, he will be lead astray due to the false ego of being the enjoyer of those objects and the doer of material activities.

भगवान के भक्त अन्याभिलाषी, भोगपरायण कर्मी या भोगरहित अभक्तज्ञानी नहीं हैं, वे जड़ की सेवा (माया की सेवा) नहीं करते हैं।

Devotees of Bhagavān are not *anya-abhilāṣī* (persons having desires other than to serve Śrī Śrī Rādhā-Kṛṣṇa), bhoga-parāyaṇa karmī (fruitive workers dedicated to sense gratification), or bhoga-rahita abhakta-jñānī (non-devotee empiric philosophers who do not try to satisfy their mundane senses). They do not serve dull matter or the illusory potency (māyā) of Lord Kṛṣṇa.

अभक्त ही जड़ की सेवा करके प्रभु बनने की अभिलाषा करते हैं।

Only non-devotees aspire to become the Supreme Lord by serving dull or inanimate matter (*jaḍa*).

भक्ति ही भक्तों की सम्पत्ति है। भक्ति ही भक्तों का जीवन है।

Devotional service to Lord Śrī Kṛṣṇa is the only wealth and life of devotees.

भगवत्सुख की वाञ्छा ही उनके हृदय की वृत्ति है।

The desire to make Bhagavān happy is the function of their heart.

अभक्तों की चित्तवृत्ति ठीक इसके विपरीत है। वे अपनी सुख-वाञ्छा को लेकर ही व्यस्त हैं।

The *citta-vṛtti* (tendency or function of the heart) of non-devotees is just the opposite of this. They are busy trying to satisfy the desire for their own happiness.

प्रश्न 527—जगत को किस रूप में देखें? (Page 32) * [KP]

Question—How should we see the material world? (Page 32) [KP]

उत्तर—शास्त्र कहते हैं—

Answer—The scriptures say:

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।"

(श्री उपनिषद् 1)

īśāvāsyam idaṁ sarvaṁ
yat kiñcit jagatyāṁ jagat
tena tyaktena bhuñjīthā
mā gṛdhaḥ kasya svid dhanam

(*Śrī Upaniṣad* 1)

हे भोगिकुल! तुम विश्व को अपना भोग्यज्ञान क्यों करते हो? भोग के बीच में रहने से हरिभजन नहीं होता है।

"O *bhogi-kula* (persons hankering for sense gratification)! Why do you regard this material world as a place for sense gratification? Living amidst sense pleasures does not lead to *hari-bhajana* (devotional service to Lord Hari)."

समस्त विश्व ही भगवान की सेवा का उपकरण है, सबकुछ अद्वितीय भोक्ता भगवान के भोग की वस्तु हैं—इसे तुम भूल क्यों रहे हो?

"Why are you forgetting that the entire universe is an instrument or paraphernalia for devotional service to Bhagavān; that everything is an object

of enjoyment for the Lord, who is the only enjoyer?"

सेवक होकर तुममें भोग करने की प्रवृत्ति क्यों आ रही है?

"Why are you, despite being a servant, getting the urge to indulge in pleasures?"

सेवा ही सेवक की वृत्ति है। अतएव सेवा में ही सेवक को शान्ति प्राप्त होती है।

"Rendering service is the nature or natural function of a servant. Therefore, a servant finds peace only in rendering service."

किन्तु भोग तो सेवा नहीं है कि जिससे शान्ति प्राप्त हो?

"Sense gratification (*bhoga*) is not devotional service (*sevā*), so how can one find peace of mind by engaging in sense gratification?"

प्रश्न 528—अपने परम कल्याण के लिए कौन सा पथ ग्रहण करना होगा? (Page 32)* [KP]

Question 528—Which path leads to one's ultimate auspiciousness? (Page 32) [KP]

उत्तर—तर्कपथ का परित्याग कर श्रौतपथ ग्रहण करना होगा।

Answer—The path of persuasive reasoning (*tarka-patha*) will have to be abandoned, and the path of submissive aural reception from authorities (śrauta-patha) will have to be adopted.

सर्वप्रथम श्रवण करना होगा।

First of all, one must listen attentively with submissive ears to the name, form, qualities, and pastimes of Lord Śrī Kṛṣṇa from the mouth of a genuine saintly person.

पहले ही आँख के द्वारा देखने की आवश्यकता नहीं है, नहीं तो वञ्चित होना होगा।

There is no need to try to see these with the eyes first; one will be deprived or cheated by doing so.

आँख के द्वारा महाजनों का आचरण देखने जायेंगे, तो उनके आचरण का अनुकरण करने वाला होकर असुविधा में पड़ जायेंगे।

If we attempt to observe the behavior of great personalities (*mahājanas*) through the lens of our material senses, we will become mere imitators of their actions and we will ultimately fall into difficulty.

प्रत्यक्षवाद, भोगवाद, आरोहवाद जीव को नास्तिकता की ओर ले जाता है, इसलिए अवरोहवाद ग्रहणीय है।

Pratyakṣa-vāda (philosophy of acquiring knowledge by one's knowledge-acquiring senses only and not accepting Vedic authority), *bhoga-vāda* (philosophy of enjoying sense gratification), and *āroha-vāda* (ascending process of gaining knowledge) lead living entities towards atheism (*nāstikatā*); therefore, one should accept the descending process of receiving revealed knowledge (*avaroha-vāda*).

प्रश्न 529—भगवान किसका उद्धार करते हैं? (Page 33) * [KP]

Question 529—Who does Bhagavān deliver from the clutches of the illusory potency (*māyā*)? (Page 33) [KP]

उत्तर—अज्ञानवशतः भोगी और त्यागी लोग भक्ति की कथा नहीं समझते हैं।

Answer—Due to ignorance, *bhogī* (persons attached to sense gratification) and *tyāgī* (renunciates) do not understand the topics of loving devotional service.

जो अति वैरागी या शुष्कज्ञानी या त्यागी हैं, वे भगवद्भजन को समझ नहीं सकते।

Those who are highly renounced (*ati-vairāgī*), attached to dry impersonalism (*śuṣka-jñānī*), or generally renounced (*tyāgī*) cannot understand *bhagavad-bhajana* (devotional service to Bhagavān Śrī Kṛṣṇa).

जो विषयों में अत्यधिक आसक्त हैं, वे भी भक्ति की कथा समझ नहीं सकते।

Those who are highly attached to worldly sense objects (viṣayas) also cannot understand the topics of loving devotional service (bhakti).

जिनको दिव्य-ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, वे ही स्वयं प्रभु बनने के लिए व्यस्त होते हैं।

Those who have not attained transcendental knowledge (*divya-jñāna*) regarding loving devotional service to Lord Śrī Kṛṣṇa remain busy in trying to usurp His position or claiming to be Him.

मैंने भगवान के श्रीचरणकमलों का आश्रय ग्रहण किया है, मैं भगवान का सेवक हूँ, भगवत्सेवा ही मेरा कार्य है—ऐसा ज्ञान ही दिव्यज्ञान है।

"I have taken shelter of Bhagavān's lotus feet; I am Bhagavān's servant; serving Bhagavān is my only duty" — such is divine knowledge.

यह गुरुकृपा द्वारा प्राप्त होता है।

One gets such transcendental knowledge by the causeless mercy of a spiritual master.

जो भगवान को नहीं त्यागते हैं, भगवान भी उन्हें नहीं त्यागेंगे।

Bhagavān does not abandon a person who does not abandon Him.

सेवा में रत व्यक्ति निश्चय ही भगवान को प्राप्त करेगा।

A person engaged in loving devotional service will definitely attain Bhagavān.

किन्तु अपने को सोलह आना (सौ प्रतिशत) देना होगा, नहीं तो ठगे जायेंगे।

One should dedicate oneself cent-percent (100 percent) to loving devotional service to Bhagavān Śrī Kṛṣṇa; otherwise, one will be cheated.

जो अपने को सौ प्रतिशत में सौ प्रतिशत देंगे, भगवान उनका अवश्य ही उद्धार करेंगे।

Bhagavān will surely deliver those persons who dedicate themselves cent-percent to loving devotional service to Him.

प्रश्न 530—जीव और ईश्वर में क्या भेद है? (Page 33)

Question 520—What is the difference between a living entity (*jīva*) and *īśvara* (the Supreme Lord)? (Page 33)

उत्तर—ईश्वर और जीव में उपास्य और उपासक का भेद है।

Answer—The Supreme Lord is the object of worship (*upāsya*) and the living entity is the worshiper (*upāsaka*). This is the primary difference between the Supreme Lord and the living entity.

Alternative: Answer—The Supreme Lord is the object of worship (*upāsya*), while the living entity is the worshiper (*upāsaka*). This fundamental distinction defines the relationship between the two.

जीव का धर्म सेवा करना है और भगवान का धर्म सेवाग्रहण करना है।

The eternal constitutional occupation and duty (*dharma*) of the living entity is to render loving devotional service to Bhagavān Śrī Kṛṣṇa, and the eternal constitutional occupation and duty (*dharma*) of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa is to accept loving devotional service from every living entity.

Alternative: The eternal constitutional occupation and duty (*dharma*) of the living entity is to render loving devotional service to Bhagavān Śrī Kṛṣṇa. Conversely, Bhagavān Śrī Kṛṣṇa's eternal constitutional occupation and duty (*dharma*) is to accept loving devotional service from every living entity.

एक वस्तु पूर्ण और बृहत् है तथा एक वस्तु सर्वापेक्षा क्षुद्र है।

One object (The Supreme Lord) is complete (*pūrṇa*) and large (*bṛhat*),

while the other object (the living entity) is minute or infinitesimal and smaller than everything we know in this world.

परमेश्वर विभु-चित् हैं और जीव अणु-चित् है।

Parameśvara (The Supreme Lord) is *vibhu-cit* or *bṛhat-caitanya* (the infinite conscious being) and the living entity is *aṇu-cit* or *aṇu-caitanya* (the infinitesimal conscious being).

ईश्वर मायाधीश हैं और जीव मायावश है।

The Supreme Lord Śrī Kṛṣṇa is the ruler of *māyā* (illusory potency), and the living entity is under the control or subjugation of *māyā* (illusory potency).

'मायाधीशता और मायावशता ही ईश्वर और जीव में भेद है।'

The Supreme Lord (Īśvara) Śrī Kṛṣṇa is the controller of His illusory potency called *māyā*. Conversely, the living entity (*jīva*) is under the subjugation of the illusory potency (*māyā*) of Śrī Kṛṣṇa. This is the fundamental difference between the Supreme Lord (Īśvara) and the living entity (*jīva*).

Alternative: The Supreme Lord (Īśvara) Śrī Kṛṣṇa is the master of His illusory potency called *māyā*. In contrast, the living entity (*jīva*) is subject to the control of Śrī Kṛṣṇa's *māyā*. This fundamental difference distinguishes the Supreme Lord from the living entity.

प्रश्न—भगवान की दया किसके प्रति होती है? (Page 33)

Question—Who is qualified to receive the mercy of Bhagavān? (Page 33)

Question—Who is the recipient of Bhagavān's grace? (Page 33)

उत्तर—निष्कपट शरणागत व्यक्तियों के प्रति ही भगवान की दया होती है।

God's grace is bestowed upon those who surrender sincerely.

Bhagavān bestows mercy upon those persons who sincerely surrender to Him without duplicity.

'मैं' और 'मेरे' का भाव रहने पर कभी भी भगवत्कृपा प्राप्त होने की सम्भावना नहीं है।

There is no possibility of attaining Bhagavān's divine grace as long as the egoistic sense of 'I' and 'mine' persists.

Alternative: As long as one maintains the false ego that "this material body is me" and "all the friends, relatives and material possessions are mine",

there is no possibility of receiving the mercy of Bhagavān.

Alternative: While clinging to the false ego that 'this material body is me' and 'all the friends, relatives, and material possessions are mine,' there is no possibility of receiving Bhagavān's mercy.

प्रश्न—श्रीचैतन्यदेव का मत संक्षेप में कहिये? (Page 34) [Reviewed]

Question—Summarize the teachings of Śrī Caitanya-deva.

Question—Can you kindly explain the teaching (opinion) of Śrī Caitanya-deva briefly?

उत्तर—श्रीचैतन्यदेव के मत के विषय में हम एक प्राचीन श्लोक में देखते हैं—

Answer—Regarding the opinion of Śrī Caitanyadeva, we see in an ancient verse—

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न परः॥

ārādhyo bhagavān vrajeśa-tanayas-tad-dhāma vṛndāvanaṁ
ramyā kācid-upāsanā vraja-vadhū vargeṇa yā kalpitā
śrīmad-bhāgavataṁ pramāṇam amalaṁ premā pumartho mahān
śrīcaitanya mahāprabhor matam idaṁ tatrādaro naḥ paraḥ

भगवान ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं श्रीधाम वृन्दावन ही आराध्य वस्तु हैं।

Bhagavān Śrī Kṛṣṇa, who is Vrajendra-nandana (the son of Śrī Nanda Mahārāja), and Śrī Vṛndāvana Dhāma are supreme worshipful objects.

ब्रजवधुओं ने जिस प्रकार श्रीकृष्ण की आराधना की, वही आराधना सर्वश्रेष्ठ है।

The way in which the damsels of Vraja (*braja-vadhus*) worshiped Lord Kṛṣṇa is the best worship.

श्रीमद्भागवत ही अमलप्रमाण है एवं प्रेम ही परम पुरुषार्थ है,

Śrīmad-Bhāgavatam is the *amala-pramāṇa* (spotless evidence) and love of Godhead (*prema*) is indeed the ultimate *puruṣārtha* (goal of human life).

यही श्रीचैतन्य महाप्रभु का मत है। उसी सिद्धान्त का ही हम आदर करते हैं, अन्य मत का नहीं।

This is the opinion of Śrī Caitanya Mahāprabhu. We respect only this principle, not any other.

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण में ही भगवत्ता का परिपूर्ण विकास है।

nandanandana meṃ hī bhagavattā kā paripūrṇa vikāsa hai.

The full manifestation of *bhagavattā* (Godhood) is only in Śrī Kṛṣṇa, who is Nanda-nandana (the son of Śrī Nanda Mahārāja).

श्रीकृष्ण तीन प्रकार की प्रतीतियों में ही अधिकारी भक्तों के समक्ष प्रकाशित होते हैं।

Śrī Kṛṣṇa appears before His qualified devotees in three manifestations only.

ये तीनों प्रतीतियाँ ही पूर्ण प्रतीतियाँ हैं।

These three perceptions are complete perceptions.

वे कृष्ण की परमात्म प्रतीति तथा ब्रह्म प्रतीति के समान आंशिक तथा असम्यक् नहीं हैं।

They are not partial (*āṁśika*) and incomplete (*asamyak*) like *paramātma-pratīti* (the perception of Lord Kṛṣṇa as the indwelling Supersoul in the heart of all the living entities) and *brahma-pratīti* (the perception of Lord Kṛṣṇa as *brahma-jyoti* or the bright light emanating from His body).

ये तीनों प्रतीतियाँ पूर्ण, पूर्णतर, पूर्णतम के रूप में प्रकाशित होती हैं।

These three *pratītis* (perceptions) manifest as complete (*pūrṇa*), more complete (*pūrṇa-tara*), and most complete (*pūrṇa-tama*).

द्वारका में पूर्ण प्रकाश, मथुरा में पूर्णतर तथा ब्रज में पूर्णतम प्रकाश है।

The *pratīti* (perception) of Bhagavān in Dvārakā is complete (*pūrṇa*), the *pratīti* (perception) of Bhagavān in Mathurā is more complete (*pūrṇa-tara*), and the *pratīti* (perception) of Bhagavān in Vraja is most complete (*pūrṇa-tama*).

हमलोग चतुर्दश लोकयुक्त ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत भूलोक में वास करते हैं।

We live on Earth within the universe consisting of fourteen planetary systems.

इसमें सात ऊपर के लोक तथा सात नीचे के लोक हैं।

In this there are seven upper planetary systems and seven lower planetary systems.

ऊपर के सात लोकों में भूलोक ही प्रथम लोक है।

Among the seven upper planetary systems, Bhū-loka (Earth) is the first planetary system.

भूः भुवः तथा स्वः—ये तीनों ऊपर के लोक सकाम पुण्यकारी गृहमेधियों के भोगस्थान हैं तथा उनके ऊपर स्थित महः, जन, तप, सत्य—ये चार लोक अगृहस्थ या त्यागियों के प्राप्य

स्थान हैं।

Bhūḥ, Bhuvaḥ, and Svaḥ—these three upper planetary systems are the realms of enjoyment for *gṛha-medhīs* (persons wholly and solely dedicated to personal gratification in family life) who perform pious activities with desires in heart. Above them are Mahaḥ, Jana, Tapa, and Satya—these four planetary systems are the attainable realms for those who are non-householders (*a-gṛhasthas*) or *tyāgīs* (renunciants, those who are in the renounced order of life).

इनमें से जो उपकुर्वाण ब्रह्मचारी अर्थात् जो निर्दिष्ट समय तक गुरुगृह में वास कर गुरुदक्षिणा प्रदान कर वापस लौट जाते हैं, उनका प्राप्यस्थान महर्लोक है।

Among these, the *upakurvāṇa-brahmacārīs*, those who stay in the spiritual master's house for a specified period, offer *guru-dakṣiṇā* (gift or charity to the spiritual master), and then return, their attainable realm is Mahar-loka.

नैष्ठिक ब्रह्मचारी अर्थात् जो आजीवन गुरुगृह में रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, उनका प्राप्य स्थान—जनलोक है।

Naiṣṭhika brahmacārīs are those who reside in the spiritual master's house for their entire life and observe the vow of celibacy (*brahmacarya-vrata*). Their attainable realm is Jana-loka.

वानप्रस्थियों का प्राप्यस्थान तपलोक है।

The attainable realm for *vāna-prasthis* (those who are in the retired stage of life which entails freedom from family responsibilities and the acceptance of spiritual vows.) is Tapa-loka.

यतिलोगों का प्राप्यस्थान सत्यलोक है।

The place of attainment for the ascetics is *satya-loka*.

The attainable realm for ascetics (yatis) is Satyaloka.

The *sannyāsīs* or *yatis* attain the topmost planetary system in the material world called Satya-loka after death.

किन्तु जो भगवद्भक्त अर्थात् जिनकी इस जगत में भोग करने की या ब्रह्म में लीन होने की सर्वनाशक आशा नहीं है, वे दुर्लभ वैकुण्ठ लोक प्राप्त करते हैं।

However the devotees of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa who do not possess the desire to enjoy sense gratification in this world or who do not possess the all-devouring or all-destroying aspiration to merge in the impersonal Brahman (the

light emanating from the body of Lord Kṛṣṇa) attain the abode of Vaikuṇṭha which is very rare or difficult to attain.

उस वैकुण्ठ के ऊपर द्वारका, उसके ऊपर मथुरा तथा उसके ऊपर गोलोक वृन्दावन है।

Above Vaikuṇṭha is Dvārakā, above that is Mathurā, and above all is Goloka Vṛndāvana.

परव्योम में जो समस्त धाम हैं, वे सब धाम ही इस प्रपंच में प्रकाशित होते हैं।

All the abodes in the transcendental realm (*para-vyoma*) also manifest in this material world made of five material elements (earth, water, fire, air and ether).

अप्रपंच में जो नहीं है, वह इस प्रपंच में भी नहीं हो सकता।

What does not exist in the transcendental realm not made of five material elements (*a-prapañca*) cannot exist in this material world made of five material elements (*prapañca*) either.

जल के सम्पर्क से रहित होकर ही सरोवर में जिस प्रकार कमल रहता है, उसी प्रकार वृन्दावन धाम भी पृथ्वी में रहता है।

The lotus blooming in the lake always remains devoid of the contact with the water of the lake and does not become wet at all, similarly the lotus like Vṛndāvana-dhāma also remains on the earth without being affected at all by the contact of the material realm.

Edited: Just as a lotus, blooming in a lake, remains untouched by the water and never becomes wet, so too does the lotus-like Vṛndāvana-dhāma remain on Earth without being affected by the material realm

जिनका चित्त सेवोन्मुख नहीं है, वे प्रपंच में अवतीर्ण धाम के अप्राकृत तत्त्व का अनुभव नहीं कर सकते।

Those whose minds or hearts are not inclined to render loving devotional service to Lord Śrī Kṛṣṇa cannot experience the transcendental principle (truth or *tattva*) of the spiritual abode (*dhāma*) of Lord Kṛṣṇa that has descended into the material world made of five elements (earth, water, fire, air and ether).

Edited: Those whose minds or hearts are not inclined towards loving devotional service to Lord Śrī Kṛṣṇa cannot experience the transcendental truth (*tattva*) of the spiritual abode (*dhāma*) of Lord Kṛṣṇa, which has descended into

the material world composed of the five elements (earth, water, fire, air, and ether)

अयोध्या, द्वारका, पुरुषोत्तमक्षेत्र आदि वैकुण्ठ के ही प्रदेश विशेष हैं।

Ayodhyā, Dvārakā and Puruṣottama-kṣetra are specific regions of Vaikuṇṭha.

वैकुण्ठ सुख से अयोध्या का सुख महत् है, अयोध्या के सुख से मथुरा का सुख महत्तर है तथा गोलोक वृन्दावन का सुख तो सभी ती सुखों का शिरोमणि है।

Version: The happiness of Ayodhyā is greater than the happiness of Vaikuṇṭha, the happiness of Mathurā surpasses the happiness that of Ayodhyā, and the happiness of Goloka Vṛndāvana is the pinnacle of all joys.

Version: The happiness experienced by a resident of Ayodhyā is surpassed by that of a Vaikuṇṭha resident. Yet, the bliss of a Mathurā resident transcends even that of Ayodhyā. And the pinnacle of all happiness lies in the abode of Goloka Vṛndāvana.

Version: The happiness that a resident of the spiritual abode of Ayodhyā receives is much greater than the happiness a resident of the spiritual abode of Vaikuṇṭha receives. The happiness that a resident of the spiritual abode of Mathurā receives is even greater than the happiness that a resident of the spiritual abode of Ayodhyā receives. Moreover the happiness that a resident of the topmost spiritual abode of Goloka Vṛndāvana receives is indeed the crest jewel of all types of happiness.

रस के तारतम्य से ही सुख का तारतम्य है।

The gradation of happiness lies in the gradation of spiritual mellows (rasa).

गोलोक में जो दुःख वर्त्तमान हैं, वे दुःख भी समस्त सुखों के मस्तक पर नृत्य करते हैं।

In Goloka, even the sorrows that exist dance atop the head of all joys.

वहाँ के दुःख भी परमानन्द की ही पुष्टि करते हैं।

Even the sorrows there only enhance the supreme bliss.

श्रीचैतन्यदेव ने उन्हीं वृन्दावनेश तथा गोकुलेश की सेवा की श्रेष्ठता का ही प्रतिपादन किया है।

Śrī Caitanyadeva has emphasized the supremacy of serving Vṛndāvaneśa (the Lord of Śrī Vṛndāvana-dhāma) and Gokuleśa (the Lord of Śrī Gokula-

dhāma).

समस्त विष्णु के अवतारों के मूल अवतारी—स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं।

The original source (*mūla-avatārī*) of all the incarnations of Lord Viṣṇu is *Svayaṁ-Bhagavān* Śrī Kṛṣṇa Himself.

ये कृष्ण नन्दनन्दन यशोदादुलाल राधानाथ हैं।

This Kṛṣṇa is Nanda-nandana (son of Nanda Mahārāja), Yaśodā-dulāla (beloved of Mother Yaśodā) and Rādhānātha (dear consort of Śrīmatī Rādhārāṇī).

वे स्वयंरूप परमेश्वर या स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ही गौड़ीयों के या श्रीरूपानुग हमारे नित्य उपास्य हैं।

He, the *svayaṁ-rūpa* Supreme Lord or *svayaṁ-Bhagavān* Śrī Kṛṣṇa Himself, is the eternal worshipful Deity (*nitya-upāsya*) of the Gauḍīya *Vaiṣṇavas* or of us, who are the followers of Śrī Rūpā Gosvāmī.

Alternative: He, the *svayaṁ-rūpa* Supreme Lord or *svayaṁ-Bhagavān* Śrī Kṛṣṇa Himself, is the eternal object of worship (*nitya-upāsya*) for the Gauḍīya Vaiṣṇavas, or us, the followers of Śrī Rūpā Gosvāmī.

प्रश्न—कृष्ण के की उपासना के विषय में कुछ कहिये? (Page 36)

Question—Can you please say something about the worship of Lord Kṛṣṇa? (Page 36)

उत्तर—ब्रजगोपियों के द्वारा आचरित उपासना ही कृष्ण की सर्वश्रेष्ठ उपासना हैं।

Answer—The worship of Lord Kṛṣṇa as performed by the cowherd damsels of Vraja (*vraja-gopīs*) is His best worship.

कृष्ण पूर्ण शक्तिमान् तथा निरंकुश इच्छामय है।

Lord Kṛṣṇa is the all-powerful Supreme Personality of Godhead (*pūrṇa-śaktimān*) possessing uncontrolled and unchecked (*niramkuśa*) desires.

पूर्ण शक्तिमान् की एक पूर्ण शक्ति भी है।

The all powerful Supreme Personality of Godhead (*pūrṇa-śaktimān*) also has complete potency (*pūrṇa-śakti*).

वह एक ही शक्ति तीन प्रकार के कार्य करती है—

That single power performs three types of activities—

<1> आनन्द या रसास्वादन—Relishing bliss or mellows of devotional service

<2> कर्तृत्व परिचालना या भोक्तृत्व सम्पादन *kartṛtva-paricālanā* (achieving the

state of being a performer) or *bhoktṛtva-sampādana* (accomplishing the state of being the Supreme Enjoyer)

<3> सत्ता प्रकाशन या अस्तित्व विधान। Exhibition of pure existence (*sattā-prakāśana*) or managing the existence (*astitva-vidhāna*)

प्रथमोक्त शक्ति का नाम ह्लादिनी, द्वितीय प्रभाव का नाम सम्वित् है, तृतीय प्रकाश का नाम सन्धिनी है।

prathamokta śakti kā nāma hlādinī, dvitīya prabhāva kā nāma samvit hai, tṛtīya prakāśa kā nāma sandhinī hai.

The power (*śakti*) that is mentioned first is called *hlādinī*, the second aspect of power is called *samvit*, and the third aspect of manifestation is called *sandhinī*.

कृष्ण की समस्त भोग्य वस्तुएँ सन्धिनी से ही प्रकट होती हैं।

All the objects and paraphernalia meant for Lord Śrī Kṛṣṇa's enjoyment manifest from the *sandhinī* potency.

वह सन्धिनी शक्ति कृष्ण का धाम, कृष्ण की लीलाओं के उपकरण आदि चिद्-वैभव प्रकाशकर कृष्ण की सेवा करती है।

That *sandhinī* power manifests Lord Kṛṣṇa's abode, the instruments or paraphernalia for Lord Kṛṣṇa's pastimes, and other spiritual opulences (*cid-vaibhava*) to serve Lord Kṛṣṇa.

सम्वित् शक्ति भगवान का अनुभव कर्तृत्व, आनन्द का भोक्तृत्व उपलब्धि एवं भगवद् ज्ञान का अनुभव कराकर कृष्ण की सेवा कर रही है।

The *samvit-śhakti* is serving Lord Kṛṣṇa by facilitating His ability to experience, enabling His state of being the enjoyer of bliss and bestowing upon Him the realization of the knowledge about Bhagavān.

ह्लादिनी शक्ति रस के विवर्धन एवं नवनवायमान चमत्कारिता के लिए अपने को बहुत से रूपों में प्रकाशित करती है।

Hlādinī-śakti (The pleasure potency) manifests herself in various forms to enhance the *rasa* (divine mellows) and to exhibit new and wondrous variegated pastimes.

ये ही ब्रजगोपियाँ हैं।

These are the *gopīs* (cowherd damsels) of Vraja.

ब्रजवधुएँ मूर्त्तिमती कृष्णप्रीति की पराकाष्ठा तथा श्रीकृष्णाकर्षिणी श्रीराधा की ही कायव्यूहा हैं।

brajavadhuem̐ mūrttimatī kṛṣṇa-prīti kī parākāṣṭhā tathā śrī-kṛṣṇākarṣiṇī śrīrādhā kī hī kāyavyūhā haiṃ.

The brides of Vraja (*braja-vadhus*) are the personification of epitome (*parākāṣṭhā*) of love for Lord Kṛṣṇa and the direct expansions of Śrī Rādhā who is able to attract Lord Śrī Kṛṣṇa.

श्रीराधा-कृष्ण की समस्त ऐश्वरी शक्ति की मूल आश्रयस्वरूपा हैं।

śrī-rādhā-kṛṣṇa kī samasta aiśvarī śakti kī mūla āśraya-svarūpā haiṃ.

They are the embodiment of original shelter (*āśraya-svarūpā*) of all the opulent powers (*aiśvarī-śakti*) of Śrī Śrī Rādhā-Kṛṣṇa.

यह चिल्लीलामिथुन (Divine Couple) एक होकर भी आस्वादक तथा आस्वादित के रूप में दो रूपों में प्रकाशित होता है।

This Eternal Divine Conjugal Couple (*cil-līlā-mithuna*), though one, manifests in two forms: the enjoyer (relisher, *āsvādaka*) and the enjoyed (relished, *āsvādita*).

Mahaprabhu comes to establish service through subordination Radhika. [Please leave this statement as it is.]

प्रश्न—अधोक्षज वस्तु क्या है? (Page 36)

Question—What is the *adhokṣaja-vastu*? (Page 36)

उत्तर—जिसे इन्द्रियों के द्वारा नापा नहीं जा सकता, वही अधोक्षज है।

Answer—That object which cannot be measured by the senses is called *adhokṣaja*.

अधोक्षज का अर्थ है—इन्द्रियज्ञानातीत या अतीन्द्रिय।

adhokṣaja kā artha hai—indriyajñānātīta yā atīndriya.

Adhokṣaja means that object which is beyond the cognition and perception of the material senses (*indriya-jñānātīta)* or beyond the knowledge acquired the mundane senses (*atīndriya*).

वह अप्राकृत वस्तु जब सेवोन्मुख इन्द्रियों में स्वयं ही अवतीर्ण होती है, तभी वह उपलब्धि का विषय होता है।

When that transcendental entity descends into the senses that are inclined to render devotional service, only then does it become an object of realization.

नहीं तो कृष्ण तत्त्व को जागतिक सर्वश्रेष्ठ पाण्डित्य, सर्वश्रेष्ठ साधना, सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमत्ता या विचार शक्ति के द्वारा आंशिक रूप में भी नहीं जाना जा सकता।

Otherwise, the principle of Lord Kṛṣṇa (*kṛṣṇa-tattva*) cannot be understood even partially through the highest worldly scholarship (*pāṇḍitya*), the best spiritual practices (*sādhanā*), the greatest intelligence (*buddhimattā*), or the power of reasoning (*vicāra-śakti*).

बहुत से लोग उन्हें प्राकृत साहित्य या दर्शन के समान मानकर भोगबुद्धि से उनकी आलोचना पूर्ण करने की चेष्टा करते हैं।

Many people, considering the principle of Lord Kṛṣṇa (*kṛṣṇa-tattva*) to be similar to worldly literature or philosophy, attempt to complete its review (study, observation) with a materialistic mindset or mood of sense enjoyment.

परन्तु उनके समक्ष अधोक्षज वस्तु कभी भी प्रकाशित नहीं होती।

However, the Supreme Personality of Godhead, who is beyond material sense perception, who is not perceivable by impure material senses (*adhokṣaja-vastu*) never reveals Himself to them.

वैकुण्ठ-वस्तु तुरीय (चतुर्थ) है,

vaikuṇṭha-vastu turīya (caturtha) hai,

Vaikuṇṭha-vastu [The Supreme Spiritual Abode which is beyond the material anxieties and Lord Nārāyaṇa who is also known as Vaikuṇṭha] is *turīya* (*caturtha,* known as the fourth, beyond the three modes of material nature).

अतः उसको ना धारण करने में असमर्थ होने के कारण हम उन्हें निर्विशेष कहकर प्रतिपादन करना चाहते हैं।

Therefore, being unable to comprehend Him, we try to establish or describe Him as impersonal (*nirviśeṣa*).

किन्तु अधोक्षज तुरीय वस्तु कभी भी निर्विशेष नहीं है।

However *adhokṣaja-turīya-vastu* (the Supreme Personality of Godhead, who is beyond material sense perception, who is not perceivable by impure material senses and who is beyond the three modes of material nature) is never *nirviśeṣa* (impersonal).

अधोक्षज तत्त्व परमस्वतंत्र है।

Adhokṣaja-tattva (The Supreme Personality of Godhead, who is beyond material sense perception, who is not perceivable by impure material senses) is *parama-svatantra* (totally independent principle).

वह जीव की विचारबुद्धि से उत्पन्न कोई वस्तु नहीं है।

Adhokṣaja-tattva is not an imaginary object produced by the intellect of the living being.

कल्पित वस्तु ही पुत्तलिका है।

The imaginary object is indeed an idol.

जीव अपनी उद्भावनी शक्ति के द्वारा जिस वस्तु की सविशेष, निर्विशेष के रूप में का धारणा या कल्पना करते हैं, जिसे साकार या निराकार बोलते हैं, वही सब पुत्तलिका हैं।

The objects that living beings conceive or imagine through their creative power (*udbhāvanī-śakti*), whether as having attributes (*sa-viśeṣa*) or without attributes (*nir-viśeṣa*), whether as having a form (*sākāra*) or formless (*nirākāra*), are all merely idols (*puttalikā*).

अधोक्षज कृष्ण या परब्रह्म वैसा निर्विशेष, सविशेष, साकार, निराकार पुत्तलिका नहीं है।

Adhokṣaja Kṛṣṇa, or the Supreme Brahman, is not such an idol with or without attributes, or with form or formless.

हम अधोक्षज के निकट challenging attitude लेकर कभी भी उपस्थित नहीं हो सकते, इसका नाम तर्कपन्था है।

We can never approach *adhokṣaja* with a challenging attitude; this is called the path of reasoning (*tarka-panthā*).

हमें विनीत भाव से उनके पास जाना चाहिए।

We should approach Him in a humble mood.

प्रश्न—श्रीचैतन्यदेव के अनुगत सज्जन लोग किस प्रणाली को मानते हैं? (Page 37)

Question—What method or system of rendering loving devotional service to Lord Kṛṣṇa do the saintly followers of Lord Śrī Caitanya follow? (Page 37)

उत्तर—जगत में असंख्य प्रकार की दार्शनिक विचारप्रणालियाँ होने पर भी उन्हें विशेष दो भागों मे बाँटा गया है—

Even though there are countless philosophical systems in the world, they can be broadly divided into two categories:

एक श्रौत प्रणाली तथा दूसरी अभिज्ञता की प्रणाली।

One system is *śrauta-praṇālī* [the path of receiving divine knowledge (*divya-jñāna*) through the *paramparā* of self-realized *gurus* by *śruti* (hearing)], and the other is the system of empirical knowledge (*abhijñatā-praṇālī*).

अनेक लोग श्रौत प्रणाली की बात कहकर भी वास्तव में अभिज्ञता की प्रणाली का ही समर्थन करते हैं।

Many people, while talking about *śrauta-praṇālī*, actually support the system of empirical knowledge.

महाप्रभु कृत ने उन्हें श्रौतब्रुव या अश्रौतपन्थी कहा है।

Mahāprabhu called them *śrauta-bruva* (the so-called followers of *śrauta-praṇālī*) or *aśrauta-panthī* (followers of the path devoid of aural reception of the Vedic principles).

श्रीचैतन्यदेव के साथ जब वह वैदान्तिक सार्वभौम भट्टाचार्य का विचार हुआ था, उस समय उन्होनें मायावादियों को श्रौतब्रुव या प्रच्छन्न नास्तिक के रूप में प्रमाणित किया था—

When Śrī Caitanya Mahāprabhu met with the scholar of Vedānta by the name of Sārvabhauma Bhaṭṭācārya, he established that the *Māyavādīs* are *śrauta-bruva* (the so-called followers of *śrauta-praṇālī*) or disguised atheists (*pracchanna-nāstika*).

वेद ना मानिया बौद्ध हय त नास्तिक।
वेदाश्रये नास्तिक्यवाद बौद्धके अधिक॥

(चैतन्य चरितामृत)

veda nā māniyā bauddha haya ta nāstika
vedāśraye nāstikyavāda bauddhake adhika

(*caitanya caritāmṛta*)

अर्थात् वेदों को न मानने के कारण बौद्ध नास्तिक हैं। परन्तु वेदों के आश्रय में नास्तिक्यवाद बौद्धों से भी अधिक निकृष्ट है।

In other words, the followers of *bauddha-vāda* (Buddhism) are considered atheists (*nāstika*) because they do not accept the authority of the *Vedas*. However adhering to the atheistic philosophy (*nāstikya-vāda*) under the shelter of the *Vedas* is worse than the followers of *bauddha-vāda* (Buddhism).

वास्तव ज्ञान कभी भी अभिज्ञता की प्रणाली से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

True knowledge can never be attained through a system of cognition.

जिस प्रकार हिमालय में गोमुख से गंगा निकलती है, उसी प्रकार आचार्य के मुख से वैकुण्ठ विषयक वास्तवज्ञान की धारा प्रवाहित होती है।

Just as the Ganges River emanates from the mouth of cow (*go-mukha*) in the Himalayas, the stream of true knowledge about Vaikuṇṭha flows from the mouth of the Ācārya (the preceptor who teaches by one's personal example).

आचार्य भगवान के संवादवाहक हैं।

The *ācārya* (the preceptor who teaches by his personal example) is the messenger of Bhagavān.

वे अतीन्द्रिय देश (वैकुण्ठ) का संवाद हम तक पहुँचाते हैं।

He conveys the messages of the transcendental realm (Vaikuṇṭha) to us.

गुरुमुख से विगलित वैकुण्ठ का संवाद केवलमात्र सेवोन्मुख इन्द्रियों के द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है।

The message of Vaikuṇṭha, flowing from the lotus mouth of the Guru, can only be received through the senses that are inclined to render devotional service.

जिसने कलकत्ता देखा है, उसी से कलकत्ता के विषय में सुनना चाहिए।

One should hear about Calcutta from someone who has seen Calcutta.

उसे प्रतिद्वन्द्वी न जानकर अर्थात् उससे कुतर्क न कर विनीत भाव से उसकी बात को मन से सुनना चाहिए।

One should listen to him with a humble attitude, not considering him an opponent, and should not engage in futile arguments.

परन्तु निष्कपट रूप से जिज्ञासु होकर प्रश्न करने की सत्प्रवृत्ति को कुतर्क या प्रतिद्वन्द्विता की खराब प्रवृत्ति नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह भी श्रवण करने की ही एक पिपासा है।

However, the inclination to inquire sincerely, straightforwardly and without duplicity is not considered a bad tendency towards futile argumentation or opposition, because it is also the thirst for listening.

इसीलिये शास्त्रों में कहा है कि कम से कम गुरु को एक वर्ष का समय देना चाहिए।

Therefore, scriptures recommend dedicating at least one year to the Guru (spiritual master).

क्योंकि शिष्य गुरु के पास प्रतिद्वन्द्विता की प्रवृत्ति को लेकर गया है अथवा वास्तव में ही जिज्ञासु होकर गया है, इसका परिचय एक वर्ष में ही मिला जायेगा।

Because whether a disciple approaches the Guru with an attitude of opposition or genuinely as an inquirer, it takes about a year to get acquainted with this distinction.

गुरु के पास जाना होगा, उनसे सुनना होगा, उनसे प्रतिद्वन्द्विता नहीं करनी चाहिए।

One must approach the spiritual master submissively and listen to His *hari-kathā* attentively, and avoid engaging in opposition, argument or rivalry with him.

हम इस विषय में बहुत सतर्क रहेंगे। इसी प्रणाली का नाम ही आरोहवाद है और अभिज्ञता की जो प्रणाली है, उसे अवरोहवाद कहा जाता है।

We will remain very cautious about this subject. This system is called ascending process (*āroha-vāda*), and the system of acquiring knowledge and

awareness submissively is called descending process (*avaroha-vāda*).

प्रश्न—क्या स्मार्तलोग विष्णुपूजा नहीं करते? (Page 39) [Reviewed]

Question: Do *smārta* people not worship Viṣṇu? (Page 39) [Reviewed]

उत्तर—स्मार्तों की विष्णुपूजा केवल गणेश-सूर्य आदि देवताओं की पूजा का ही नामान्तर है।

Answer: The worship of Lord Viṣṇu as performed by *smārta* adherents is just another name of the worship of other deities such as Ganeśa and Sūrya.

उसमें विष्णु के परमपद की पूजा नहीं होती।

In it, worship of the supreme abode and lotus feet of Lord Viṣṇu are not performed.

विष्णु को पंचदेवताओं में अन्यतम मानकर जो पूजा होती है, उसमें विष्णु के असमोर्ध्वपद को अन्यान्य देवताओं के समान मानना हो जाता है, उसमें विष्णु की सामान्य देवताओं में गणना की जाती है।

The position of any demigod is neither equal or superior than the position of Lord Viṣṇu. In other words, the position of Lord Viṣṇu is *asama-ūrdhva-pada*. When one worships Lord Viṣṇu considering Him to be one among the five deities worshiped during the process of *pañca-upāsanā,* then one regards the incomparable and unequaled position of Lord Viṣṇu to be equal to the position of the other demigods. Moreover, one regards Lord Viṣṇu to be one among the ordinary demigods.

किन्तु यह पाषण्डता या अपराध है। शास्त्र कह रहे हैं—

But this is heresy or an offense. The scriptures say—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्म-रुद्रादि-दैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥

yastu nārāyaṇaṁ devaṁ brahma-rudrādi-daivataiḥ
samatvenaiva vīkṣeta sa pāṣaṇḍī bhaved dhruvam

पाषण्डी हिन्दु लोग कृष्णनाम को ही एकामात्र साध्य तथा साधन के रूप में विचार नहीं करते।

Heretical Hindu people (In other words, the Hindu people, who are faithless non-believers) do not consider the name of Lord Kṛṣṇa alone as the sole goal (*sādhya*) and means of attainment (*sādhana*).

वे कृष्ण को अन्य देवता के समान तथा कृष्णनाम को योग-यज्ञ-तपस्या-ध्यान-व्रत

आदि के समान ही मानते हैं।

They consider Lord Kṛṣṇa to be equal to other demigods and Lord Kṛṣṇa's name to be on par with practices like *yoga*, sacrifices (fire sacrifice), austerities (*tapasyā*), meditation (*dhyāna*), and vows (*vrata*).

किन्तु महाप्रभु ने कहा है—

But Mahāprabhu has said—

कोटि अश्वमेध एक कृष्णनामसम।
जेइ कहे, से पाषण्डी दण्डे तारे यम॥

koṭi aśva-medha eka kṛṣṇa-nāma-sama.
jei kahe, se pāṣaṇḍī daṇḍe tāre yama..

अर्थात् जो कहता है कि एक कृष्णनाम कोटि अश्वमेध यज्ञ के यह समान है, वह पाषण्डी है, उसे यमराज दण्ड देते हैं।

One who says that a single name of Lord Kṛṣṇa (*kṛṣṇa-nāma*) is equal to a million Aśvamedha *yajñas* (sacrifices) is a heretic (faithless non-believer) and is punished by Yamarāja.

पञ्चोपासना में जो विष्णुपूजा है, उससे विष्णु संतुष्ट नहीं होते। वह देव पूजा मात्र है, अत: अवैध है।

The worship of Lord Viṣṇu performed under the system of Pañcopāsanā does not satisfy Him. It is merely the worship of demigods and is therefore invalid. Because such worship disregards all the injunctions of scriptures and unauthorized. [**Note:** Pañcopāsanā is the worship by impersonalist Māyāvādīs of five deities (Viṣṇu, Durgā, Brahmā, Gaṇeśa and Vivasvān) that is motivated by the desire to ultimately abandon all conceptions of a personal Absolute.]

प्रश्न—देवताओं की पूजा अवैध होने पर भी उससे तो कृष्ण की ही पूजा होती है? (Page 39) [Reviewed]

Question—Even if the worship of demigods is without true understanding and in a way contrary to the injunctions of *śāstra*, isn't it still a form of Lord Kṛṣṇa's worship? (Page 39) [Reviewed]

उत्तर—विधिपूर्वक पूजा होने पर ही वह फलदायक होती है।

Answer—Only when worship is performed according to proper manner as prescribed in the scriptures does it yield results.

उससे मंगल होता है।

That leads to auspiciousness.

अविधिपूर्वक पूजा से सुविधा नहीं हो सकती।

Worship performed in a way contrary to the injunctions of scriptures cannot bring about any benefit.

कृष्ण ही एकमात्र समग्र विश्व तथा विश्व के अतीत द्विदल वैकुण्ठ के एकच्छत्र सम्राट हैं।

Kṛṣṇa is the sole sovereign of the entire universe and the transcendental realm of *dvi-dala* Vaikuṇṭha, beyond the material world.

अत: उनके भोग में कोई बाधा नहीं दे सकता।

Therefore, no one can obstruct His enjoyment.

उनकी पूजा सभी कर रहे हैं, किन्तु अविधिपूर्वक पूजा करने से पुजारी की कोई सुविधा नहीं होती।

Everyone is worshiping Him, but worship without following the scriptural injunctions does not benefit the worshiper.

जो सूर्य, गणेश, शक्ति आदि की पूजा कर रहे हैं, वे भी कृष्ण की ही छायाशक्ति की पूजा कर रहे हैं।

Those who worship demigods like the Sun (Sūrya), Ganeśa, and Śakti (Durgā) are also worshiping the shadow potency (*chāyā-śakti*) of Lord Kṛṣṇa.

क्योंकि कृष्ण से किसी की स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

Because no one has independent authority (power) apart from Lord Kṛṣṇa.

किन्तु छाया की पूजा होने पर उनके स्वरूप का ज्ञान नहीं होता—सम्बन्धज्ञान विकसित नहीं होता।

However, worshiping the shadow does not provide knowledge of Bhagavān Kṛṣṇa's true form (*svarūpa*) and *sambandha-jñāna* (knowledge of the inter-relationship between Śrī Bhagavān, His energies, and the living beings, both conditioned and liberated) does not develop.

जिस दिन हमारा सम्बन्ध ज्ञान होगा, उसी दिन हम समझ पायेंगे कि कृष्ण ही एकमात्र प्रभु हैं तथा जीवमात्र ही कृष्ण का नित्यदास है, कृष्णसेवा ही जीव का नित्यधर्म है।

On the day we gain *sambandha-jñāna*, we will understand that Lord Kṛṣṇa is the only Lord, that every living entity is an eternal servant of Lord Kṛṣṇa, and that serving Lord Kṛṣṇa (*kṛṣṇa-sevā*) is the eternal duty (*nitya-dharma*) of the living entity.

सर्वेश्वर कृष्ण का भजन ही जीव का नित्य कर्त्तव्य है।

The worship of Lord Kṛṣṇa, who is *sarveśvara* (the Supreme Controller of all the living entities, the material universes and the spiritual universes) is the eternal duty of the living entity.

अन्यान्य देवतागण सभी विष्णु के किंकर हैं।

All other demigods are servants of Lord Viṣṇu.

गोविन्द का आदेश पालन ही उनका कार्य है।

Their only duty is to follow the orders of Lord Govinda.

जो देवताओं को विष्णु के किंकर न जानकर उन्हें विष्णु का नामान्तर या रूपान्तर मानते हैं, वे कभी भी मुक्त नहीं हो सकते।

Those who do not recognize the demigods as servants of Lord Viṣṇu and instead consider them as mere different names or different forms of Lord Viṣṇu can never attain liberation.

प्रश्न—क्या भक्त अपनी बात कहते हैं? (Page 40)

Question: Do devotees express their own opinions? (Page 40)

उत्तर—मुझे अनेक लोग कहते हैं कि आपकी कथा सुनकर मैं बहुत उपकृत हुआ हूँ।

Answer: Many people tell me, "After listening to your *hari-kathā*, I have been greatly benefited."

किन्तु इसमें हमारी कोई विद्या-बुद्धि नहीं है।

However, there is no knowledge or intelligence on our part in this.

गुरुदास होने के कारण हम केवल गुरुपादपद्म की ही कथाओं को कहते हैं।

As a servant of the Guru, we only speak the *hari-kathā* that we have heard from *Guru-pāda-padma*.

हम किसी प्रकार की कोई नई बात नहीं कहते। हाँ! भगवान को पाने के लिए उसके अनुकूल जो सब कथाएँ कहने योग्य हैं, हम केवल वही कहते हैं।

We do not speak of any new topics. However, we do speak only those spiritual topics that are favorable for attaining the lotus feet of Bhagavān.

मैंने आपके समक्ष जो सब कथाएँ कही हैं, उसमें मेरा कुछ भी नहीं है।

There is nothing of my own in all the stories I have told you.

हमारी व्यक्तिगत किसी प्रकार की योग्यता नहीं है। यह सब गुरुदेव की ही कथा है।

We have no personal qualifications of any kind. All of this is the Guru's story.

गुरुपरम्परा में मेरे गुरुदेव तक जो सनातन सत्य कथाएँ चली आ रही हैं, मैं उन्हीं कथाओं का ही कीर्त्तन करता हूँ।

In the *guru-paramparā*, I only sing the eternal truths that have been passed down to my Gurudeva.

भक्त कहते हैं कि श्रीगुरुपादपद्म कृपापूर्वक हृदय में जो स्फूर्ति कराते हैं, वही जिह्वा में प्रकाशित होता है। मेरी अपनी कुछ भी बोलने की योग्यता नहीं है।

Devotees say that whatever Śrī Guru's lotus feet graciously inspire in the heart manifests on the tongue. I have no ability to speak anything on my own.

प्रश्न—हिन्दुधर्म में पौत्तलिकता क्यों है? (Page 41)

Question - Why is there idolatry (idol worship) in the Hindi religion? (Page 41)

उत्तर—इस जगत में भगवान के representative या प्रतिनिधि पर केवल दो हैं।

Answer: There are only two representatives of Bhagavān in this world.

एक अप्राकृत शब्द या श्रीनाम तथा दूसरा—भगवान का नित्यचिद्विलास सविशेष रूप का अर्चावतार।

eka aprākṛta śabda yā śrīnāma tathā dūsarā—bhagavāna kā nityacidvilāsa saviśeṣa rūpa kā arcāvatāra.

One is the transcendental sound vibration (*aprākṛta-śabda*) or the holy name of Śrī Kṛṣṇa (*śrī-nāma*), and the other is Bhagavān's Deity form (*arcāvatāra*) which has all transcendental qualities (*sa-viśeṣa*) and which engages in eternal pleasure pastimes (*nitya-cid-vilāsa*).

हम जिस वस्तु से बहुत दूर अथवा जिस वस्तु के निकट तक अभी नहीं पहुँच सकते, उस वस्तु को चक्षु इन्द्रिय के द्वारा दर्शन, नासिका के द्वारा घ्राण, जिह्वा के द्वारा आस्वादन, त्वचा के द्वारा स्पर्श नहीं कर सकते।

We cannot see an object by our eyes if it is very far from us and if we have not come close to it. We cannot smell it with our nostrils, taste it with our tongue, or touch it with our skin.

जिस प्रकार London town को हम यहीं पर बैठकर नहीं देख सकते, घ्राण नहीं कर सकते, आस्वादन नहीं कर सकते या स्पर्श नहीं कर सकते।

Just as we cannot see, smell, taste, or touch London town while sitting here (in India).

इन चारों इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय का कार्य दूरस्थित वस्तु के ऊपर प्रयुक्त नहीं हो सकता।

The function of any of these four sense organs cannot be used on a remote object.

The faculties of these four sense organs fail to acquire knowledge about the remote objects.

केवल कर्णेन्द्रिय के द्वारा दूर स्थित वस्तु का ज्ञान पाया जा सकता है।

Knowledge of distant objects can be obtained only through the sense organ of hearing (ears).

Only the ear can acquire knowledge of distant objects.

London का विषय हम यहीं पर बैठकर श्रवणेन्द्रिय के द्वारा जान सकते हैं।

We can learn about London by sitting here itself through our sense of hearing.

टेलीग्राम में शब्द लन्दन से हमारे कान में लन्दन का विषय हमें बता सकता है।

The words in the telegram from London may convey the theme of London to our ears.

टेलीफोन के द्वारा हम दूर स्थान के विषय में जान सकते हैं।

Through telephone we can know about distant places.

पुस्तक में हम जो लन्दन की बातें पढ़ते हैं, वह Visualized (चाक्षुष) Sound मात्र है।

The things we read about London in the book are merely visualized sound.

Scriptures are but the visualized revealed transcendental sounds. (शास्त्र समूह अप्राकृत शब्द के अवतार हैं।)

हजारों वर्ष पूर्व या युगयुगान्तर पूर्व साधु-सन्तों ने जिन शब्दों का उच्चारण किया था, उन्हें हम लेखनी के माध्यम से सुन सकते हैं।

The words were uttered by sages and saintly persons thousands of years ago or ages ago, we can listen to them through writing.

Thousands of years ago or before ages, the words spoken by saints and sages, we can hear through writing.

अतः ग्रन्थ या लेखनीसमूह शब्द के अर्चावतार है।

Therefore, the scriptures or a collection of writings is the *arcā-avatāra* (incarnation of the Deity in a form that can be worshiped) of the transcendental sound vibration (*śabda*).

किन्तु जागतिक शब्द, जैसे—लन्दन शब्द लन्दन से पृथक हैं।

But worldly word or sound vibration (*śabda*), like the word or sound vibration London, are different from London.

मायिक जगत के शब्दों में मायिक व्यवधान है।

There is illusory interference in the words or sound vibrations of the illusory world.

यहाँ पर शब्द तथा शब्दी में—जल शब्द तथा जल वस्तु में भेद है।

Here there is a difference between the word and the wordi – between the word water and the object water.

Here, there is a difference between the word (sound vibration) and its

object—the word 'water' and the substance 'water'.

किन्तु वैकुण्ठ जगत में शब्द तथा शब्दी में किसी प्रकार का भेद नहीं है।

But in the Vaikuṇṭha world there is no difference between word (*śabda*) and the wordee (*śabdī*).

But in the Vaikuṇṭha world, there is no difference between the word and its object.

वहाँ पर शब्द ही वस्तु तथा नाम ही नामी है।

There, the word (*śabda*) itself is the object (*vastu*), and the name (*nāma*) itself is the named (*nāmī,* Lord Kṛṣṇa).

ईश्वर के नाम मायिक जगत में उत्पन्न शब्द नहीं है।

The name of the Supreme Lord is not a word or sound vibration originated in the illusory world.

वे वैकुण्ठ से अवतीर्ण हुए हैं।

He has descended from Vaikuṇṭha.

इन अवतीर्ण अप्राकृत शब्दों में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं है।

There is no obstruction (*vyavadhāna*) in these transcendental words (*aprākṛta-śabdas*) which have descended from the spiritual world.

वे शब्द ही साक्षात् चिद्विलासमय परब्रह्म हैं।

That transcendental sound vibration (*śabda*) is directly the transcendental Supreme Brahman (*para-brahma*) which enacts transcendental pleasure pastimes (*cid-vilāsa*).

इन अप्राकृत शब्दों को जो सब समय उच्चारण करते हैं, उनका सब समय परब्रह्म के साथ ही Communion (संग) होता है।

Those who utter these transcendental sound vibrations (*aprākṛta-śabdas*) all the time, they are in communion with the Supreme Brahman all the time.

"Those who continuously utter these transcendental sound vibrations (*aprākṛta-śabdas*) are perpetually in communion with the Supreme Brahman.

जो वस्तु से दूर हैं, वे जिस प्रकार शब्दों की सहायता से दूर स्थित वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं

Just as those who are far away from an object can gain knowledge of that distant object with the help of words (sound vibrations)

तथा वस्तु के सम्मुख रहने पर भी शब्दों की सहायता से ही वस्तु की स्तुति, प्रशंसा तथा महत्त्व प्रकाश एवं उसके द्वारा सम्पूर्ण रूप से समस्त इन्द्रियों के द्वारा वस्तु की

उपलब्धि कर सकते हैं,

And even when the object is in front of us, we can praise, appreciate and highlight the importance of the object only with the help of words and through that we can comprehend the object completely with the help of all our senses.

उसी प्रकार साधन तथा साध्य दोनों ही अवस्थाओं में अप्राकृत शब्द की आवश्यकता स्वीकृत है।

Similarly, the need for *aprākṛta* (transcendental) words is accepted in both the stages of *sādhana* (devotional practice) and *sādhya* (perfection in devotional service).

शब्दब्रह्म का उच्चारण या नामसंकीर्त्तन को ही सर्वाचार्य-शिरोमणि जगद्गुरु श्रीचैतन्यदेव ने साधन-साध्य के रूप में कीर्त्तन किया है।

Jagad-guru Śrī Caitanya-deva, the crest-jewel of all *ācāryas*, has glorified the congregational chanting (*nāma-sankīrtana*) of *śabda-brahma* or the transcendental holy names as both the means (*sādhana*) and the goal (*sādhya*).

मैंने (प्रभुपाद) Reverend Butler साहब से कहा कि जिसमें भगवान का कोई interest (प्रयोजन या स्वार्थ) नहीं है, किसी का व्यक्तिगत तात्कालिक अपूर्ण स्वार्थ या कामना है, उसे ही in vain कहते हैं अर्थात् वह क्रिया ही वृथा नाम ग्रहण कहती है।

I (Prabhupāda) told Reverend Butler Sahib that that in which Bhagavān has no interest (purpose or self-interest), in which there is someone's personal, immediate unfulfilled self-interest or desire, that is called 'in vain', that action is called taking (chanting) the holy name in vain.

जिस प्रकार आपके खाने के लिए ही यदि आपका नौकर आपको आवाज़ देता है, आपके सुख के लिए आपके स्त्री-पुत्र आदि यदि आपको बुलाते हैं, तो क्या यह in vain है!

In the same way, if your servant calls you to eat your food, or your wife and children call you for your comfort, is this 'in vain'?

ऐसे न बुलाना ही in vain है।

Not calling you in such a manner would be 'in vain'.

भगवान के भक्तगण भगवान को नामसंकीर्त्तन के द्वारा बुलाते हैं—केवल भगवान के सुख के लिए—भगवान की सेवा के लिए, अपनी किसी कामना की पूर्त्ति के लिए नहीं।

The devotees of Bhagavān call upon Bhagavān by chanting His name — only for the pleasure of the Lord—for the service of the Lord, not for the fulfillment of any of their own desires.

जिनकी thought idolise (चिन्ता व्युत्परस्तवता) में आसक्त हो गयी है, वही श्रीमूर्त्ति को idol (पुत्तलिका या पुतला) देखता है।

Those whose thought has become attached to idolise (*cintā vyut-parastavatā*) see *śrī-mūrti* (the transcendental Deity form of Lord Kṛṣṇa) as an idol.

उससे हमें किसी प्रकार की असुविधा नहीं है।

We don't have any inconvenience because of that.

Through this, we do not experience any inconvenience.

श्रीविग्रह वैकुण्ठ में स्थित चिद्विलास भगवान के नित्यस्वरूप का ही जगत में करुणामय अवतार हैं।

śrīvigraha vaikuṇṭha meṃ sthita cidvilāsa bhagavāna ke nityasvarūpa kā hī jagata meṃ haiṃ.

Śrī-vigraha (The Deity form of the Lord) is the compassionate incarnation (*karuṇāmaya-avatāra*) in the world of the eternal form (*nitya-svarūpa*) of Bhagavān who performs *cid-vilāsa* (transcendental pleasure pastimes) situated in Vaikuṇṭha.

वह भगवान का साक्षात् निदर्शन है।

It is the direct manifestation of Bhagavān.

श्रीविग्रह साक्षात् भगवान हैं—साक्षात् इष्टदेव हैं।

Śrī-vigraha sākṣāt bhagavāna haiṃ—sākṣāt iṣṭadeva haiṃ.

Śrī-vigraha (The Deity form of the Lord) is the direct manifestation of Bhagavān—it is directly one's worshipable Deity (*iṣṭa-deva*).

'प्रतिमा नहे तुमि साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन' अर्थात् आप प्रतिमा नहीं, साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन हैं।

'pratimā nahe tumi sākṣāt brajendra-nandana'

In other words, You are not an idol or an image, You are directly Brajendra-nandana (the son of Śrī Nanda Mahārāja) Himself.

वैष्णव लोग जड़ का आकार या निराकार के अन्तर्गत ईश्वर रूप की कल्पना नहीं करते।

Vaiṣṇavas (The Devotees of Lord Kṛṣṇa) do not think that the Supreme Lord's form is material and formless.

वे पौत्तलिक नहीं हैं।

They are not idolaters.

परन्तु जो प्राकृत बुद्धि के द्वारा ही विचार करते हैं, उनके चित्त में प्रतिफलित समस्त प्रकार की जड़ावस्थित मूर्त्ति ही पुत्तलिका है।

However, those who consider only through material intelligence perceive all kinds of material idols as mere figurines.

But those who think through their material intelligence, all kinds of inanimate images that appear in their minds are mere puppets (idols).

जो निर्विशेषवादी हैं या वस्तुज्ञानके अभाव के कारण जो जड़ को ईश्वर मानकर पूजा करते हैं, वे काल्पनिक सम्पूर्ण निराकाराश्रित पौत्तलिक हैं।

Those who are impersonalists (*nirviśeṣa-vādīs*) or, due to a lack of true knowledge, worship the dull material objects as the Supreme Lord (Īśvara), are indeed idolaters who entirely rely on the false conception that Bhagavān has no form.

गई बहोर गरीब नेवाजू
सरल सबल साहिब रघुराजू

Those who are impersonalists or those who worship inanimate objects as God due to lack of knowledge of the material world are imaginary, completely formless, dependent on material things.

हम चेतनमयी श्रीमूर्त्ति को—सच्चिदानन्द श्रीविग्रह को जड़पिण्ड न मानकर साक्षात् भगवान मानकर मन्त्रों के द्वारा—चेतन के द्वारा हृदय से उनकी उपासना करते हैं।

We do not consider the Transcendental Deity endowed with—the embodiment of eternal bliss and knowledge—as a mere material form. Instead, we worship this divine form as the actual presence of God, with *mantras* and with conscious devotion from the heart.

We do not consider the conscious Shrimurti - the Sachchidananda Shrivigraha as an inanimate object, but consider it to be God himself and worship Him with the help of mantras and with consciousness from our hearts.

चेतन की वृत्ति के द्वारा भगवान के साथ communication होता है।

Communication with Bhagavān occurs through the function of consciousness.

जिनके विचार या बुद्धि अचेतन के द्वारा जड़ित हो गयी है, जो जड़ दर्शन के अतिरिक्त चेतन के किसी प्रकार के व्यवहार को नहीं जानते, वे ही अर्चावतार श्रीविग्रह को idol (पुतला) मानते हैं।

Those whose thoughts and intellect have become encrusted by the insentient matter, who do not know any behavior of the conscious other than the philosophy of the material objects (*jaḍa-darśana*), they are the ones who consider *arcāvatāra śrī-vigraha* to be idol.

श्रीनाम के द्वारा श्रीमूर्ति की सेवा का होती है—चेतन के द्वारा चेतन की सेवा होती है।

śrīnāma ke dvārā śrīmūrti kī sevā kā hotī hai—cetana ke dvārā cetana kī sevā hotī hai.

Through the divine name (*śrī-nāma*), the service of *śrī-mūrti* is performed—it's the conscious serving the conscious.

प्रश्न—सेवा का फल क्या है? (Page 43) [Reviewed]

Question—What is the reward of service? (Page 43) [Reviewed]

उत्तर—निष्कपट रूप से भगवान का आश्रय ग्रहण करना एक बात है तथा भगवान की सेवा के नाम पर अपनी इच्छानुसार चलना एक बात है।

Taking shelter at the lotus feet of Bhagavān sincerely and without duplicity is one thing, and acting according to one's own will in the name of Bhagavān's service is another.

जो स्वतंत्र है, वह अनुगत नहीं है तथा जो अनुगत है, वह स्वतंत्र नहीं है।

He who is independent is not *anugata* (an obedient follower), and he who is *anugata* (an obedient follower) is not free (independent minded person).

अनुगत—श्रेयःपन्थी तथा स्वतंत्र— प्रेयःपन्थी हैं।

The obedient followers (*anugata-jana*) are *śreyaḥ-panthī* (persons who perform the activities that are ultimately beneficial and auspicious) and the independent minded (*svatantra*) persons are *preyaḥ-panthī* (persons seeking immediately beneficial but not ultimately auspicious results).

सेवा का अभिनय तथा सेवा एक वस्तु नहीं है।

Pretending to render service (*sevā-abhinaya*) and actual service (*sevā*) are not the same thing.

फल के द्वारा ही उसका पता की चलता है।

It is known only through the fruit (result, outcome) whether one is actually performing the service or whether one is pretending to serve.

सेवा के फल से उत्तरोत्तर सेवा में उन्नति या सेवा की प्रबल आकांक्षा उत्पन्न होती है, इसके विपरीत अर्थात् सेवा का अभिनय करने से भोगों की ओर प्रगति होती है।

As a result of rendering genuine service, one gradually progresses in service or develops a strong desire for service. On the contrary, engaging in the pretense of service (*sevā-abhinaya*) leads to a tendency toward indulgence in worldly pleasures and sense objects.

प्रश्न—सेवक का कैसा विचार होगा? (Page 43) [Reviewed]

Question—What should the servant think? (Page 43) [Reviewed]

उत्तर—श्रीगुरु की महिमा श्रवण करना ही हमारे लिए एकमात्र कर्त्तव्य है।

Answer—Our only duty is to give aural reception the glories of Śrī Guru.

मेरे गुरुदेव मुझे जैसे रहने का निर्देश दें, उसे अपने सिर पर धारण करना होगा।

I must hold on my head the instructions my Gurudeva gives me on how to live.

इसके लिए यदि असुविधा भी हो, तो उसका फल लेने के लिए मैं तैयार हूँ, यही असली शिष्य का विचार होता है।

If there is any inconvenience in this, I am ready to face the outcome whether palatable or unpalatable—this is the thinking process of a true or genuine disciple.

जो कीर्त्तन करते हैं, वे ही गुरुपादपद्म हैं। मन देकर उनके द्वारा कीर्त्तित विषय का श्रवण तथा उसका जीवन में पालन ही शिष्य का विचार होता है।

One who performs *kīrtana* (loud glorification of the name, form, qualities and pastimes of Bhagavān) is indeed *Śrī Guru-pāda-padma*. A disciple's duty is to listen attentively to the topics that *Śrī Guru-pāda-padma* narrates and implement those teachings in his life.

प्रश्न—किस उपाय से शुद्ध भजन होता है? (Page 44) [Reviewed]

Question—What means should one adopt in order to render pure devotional service (*śuddha-bhajana*)? (Page 44) [Reviewed]

उत्तर—साधुसंग में रहकर हरि-गुरु-वैष्णवों की सेवा करते-करते ही आत्मकल्याण होता है।

Answer—One attains real auspiciousness for oneself by staying sincerely in the company of the saintly persons (*sādhus*) and by rendering devotional service unto Lord Hari, the spiritual master and the devotees of Lord Kṛṣṇa (Vaiṣṇavas).

मन के अनुसार भजन के अभिनय को भजन नहीं कहते।

Pretending to engage in the devotional service (*bhajana*) in a whimsical manner according to one's mind cannot be termed as real devotional service.

श्रीगुरुपादपद्म के निर्देशानुसार गुरु एवं कृष्ण के सुख के लिए भजन करने पर ही शुद्ध भजन होता है।

Only when one performs *bhajana* (devotional service) according to the instructions of the *Śrī Guru-pāda-padma* and for the happiness of the Guru and Lord Kṛṣṇa, is it considered pure *bhajana* (devotional service).

प्रश्न—जीव का नित्यधर्म क्या है? (Page 44) [Reviewed]

Question—What is the eternal duty of a living being? (Page 44) [Reviewed]

उत्तर—धर्म, अर्थ तथा काम—ये तीनों ही भोगधर्म हैं तथा मोक्ष की वासना—त्यागधर्म है।

Answer: *Dharma (Mundane religiosity), artha* (economic development), and *kāma* (sense gratification) are all forms of *bhoga-dharma* (worldly pursuits meant to satisfy one's senses), while the desire for *mokṣa* (liberation from the cycle of repeated birth, death, disease and old age) is *tyāga-dharma* (the path of renunciation).

इस भुक्ति-मुक्ति पिशाची के कवल से मानव जाति का उद्धार करने के लिए भागवत धर्म का प्रकाश हुआ है।

The *bhāgavata-dharma* (the science of devotional service to the Supreme Lord*)* has manifested to liberate humankind from the clutches of the demonesses of *bhukti* (desire for worldly sense gratification) and *mukti* (the desire for liberation).

समग्र मानवजाति ने भोगधर्म तथा त्यागधर्म को ही धर्म मान रखा है।

The entire human race has accepted the hedonistic pursuit of unrestricted sense enjoyment (*bhoga-dharma*) and *tyāga-dharma* (the path of dry renunciation) as the only religion (*dharma*, prescribed duty of human being).

भागवत धर्म समग्र मानवजाति की धारणा में विप्लव लाकर कह रहे हैं—भोगकामना तथा मोक्षकामना के हाथ से मुक्ति प्राप्तकर अधोक्षज भगवान की सेवा ही जीव का नित्यधर्म है।

Bhāgavata-dharma (The science of devotional service to the Supreme Lord) is bringing about a revolution in the overall perception of humanity by stating the following fact—it is the the eternal constitutional, inherent function of every living entity to free oneself from the clutches of the desire for sense gratification (*bhoga-kāmanā*) and the desire for liberation (*mokṣa-kāmanā*) and render devotional service to Bhagavān Śrī Kṛṣṇa who is Adhokṣaja (the Lord who is beyond the cognition and perception of the material senses).

Integer परमेश्वर से integral part जीव यदि स्वतंत्र होकर अपनी सुविधा या स्वार्थ पोषण करना चाहता है, तभी उसका अमंगल होगा।

If an integral part, the soul desires to be independent from the Integer, the Supreme Lord, and wants to pursue its own convenience or self-interest, then it will experience misfortune or inauspiciousness.

भगवान के सुख के लिए यत्न करने पर ही सुखी हुआ जाता है तथा अपने सुख के लिए यत्न करने पर दुःख ही आते हैं।

True happiness comes only from striving for Bhagavān's pleasure, while striving for one's own happiness leads only to suffering.

धर्म को प्रधान दो भागों में विभक्त किया जाता है।

Dharma is primarily divided into two parts.

एक प्रकार का धर्म है—माप लेने का धर्म या जिसे कहते हैं—'अनया मीयते इति माया' या आध्यक्षिकता तथा दूसरे प्रकार का धर्म है—आराधना का धर्म, 'अनया राधितः' या अधोक्षज धर्म।

One type of *dharma* is the *dharma* of measurement, which is also known as, '*anayā mīyate iti māyā*' (*māyā* is that by which things can be measured). This is also known as *ādhyakṣikatā* [Engaging one's senses in *tarka-patha*, or persuasive reasoning, is known as *ādhyakṣikatā*.] Second type of *dharma* is known as *dharma* of loving worship (*ārādhanā*), '*anayā rādhitaḥ*' or *adhokṣaja-dharma.*

[**Note:** The *dharma* of worshiping the Supreme Personality of Godhead who is beyond the grasp of the mundane senses with love and affection can be understood from the activities of Śrīmatī Rādhārāṇī.

anayārādhito nūnaṁ
bhagavān harir īśvaraḥ
yan no vihāya govindaḥ
prīto yām anayad rahaḥ

Truly the Personality of Godhead has been worshiped by Her. Therefore Lord Govinda, being pleased, has brought Her to a lonely spot, leaving us all behind.]

जो धर्म मापा जाने योग्य है कि उसके द्वारा कभी भी ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त नहीं होगा।

A *dharma* that can be measured can never lead one to Bhagavān's proximity. Adherence to such religious principles cannot bestow upon the intimate association of the Supreme Personality of Godhead.

अन्याभिलाष कर्म, ज्ञान, योग, व्रत आदि सभी मापने योग्य धर्म या अभक्ति हैं।

anyābhilāṣa karma, jñāna, yoga, vrata ādi sabhī māpane yogya dharma yā abhakti haiṃ.

Anyābhilāṣa karma, jñāna, yoga and vrata are all measurable *dharma* or *abhakti* (non-devotional service).

Fruitive activities (*karma*), knowledge of *nirviśeṣa-brahman*, aimed at impersonal liberation (*jñāna*), practice of mysticism in order to attain mystic perfection (*yoga*) and mundane vows (*vratas*) are all finite or measurable *dharmas* or *abhakti* (absence of devotional service).

अन्यान्य सभी धर्मों में भोग तथा त्याग की philosophy है। किन्तु अधोक्षज की सेवा की philosophy एकमात्र भागवत धर्म में ही है। इसीलिए भागवद्दर्शन अद्वितीय है।

All other religions (*dharmas*) emphasize the philosophies of *bhoga* (sense enjoyment) and *tyāga* (renunciation). However the philosophy of serving Adhokṣaja (the Supreme Personality of Godhead, who is beyond material sense perception, who is not perceivable by impure material senses) is unique to *bhāgavata-dharma* (the devotional way of life). This is why *bhāgavata-darśana* (the philosophy of *Śrīmad-Bhāgavatam*) is unparalleled

तराजू के एक पलड़े में जगत के समस्त अन्याभिलाष, कर्म-ज्ञानचेष्टायुक्त साधनों को रख दिया जाये तथा दूसरे पलड़े में 'विद्या भागवतावधि' रख दिया जाये, तो किस ओर का मूल्य अधिक के होगा, इसकी एक comparative study करने के लिए भागवत आह्वान कर रही है।

If all the worldly desires and endeavors other than to serve Śrī Śrī Rādhā-Kṛṣṇa (*anyābhilāṣa*) including *sādhanas* (practices) such as *karma* (fruitive activities meant for elevation to the heavenly planets after death), *jñāna* (knowledge of *nirviśeṣa-brahman*, aimed at impersonal liberation), were placed on one side of a weighing scale, and the '*vidyā bhāgavatāvadhi*' (topmost spiritual science of *Śrīmad-Bhāgavatam* which is the epitome and culmination of all the knowledge) were placed on the other side of the weight scale, which side would weigh more? *Śrīmad-Bhāgavatam* is calling upon us to conduct a comparative study to determine this.

शुद्ध विष्णु उपासना एक ओर तथा सूर्य, गणेश, शक्ति, शिव—ये चार प्रकार की उपासना एवं विष्णु को कर्मफलबाध्यदेवता मानकर विष्णु उपासना का छल दूसरी ओर है।

On one side is pure worship of Lord Viṣṇu, and on the other side are four types of worship: Sūrya, Gaṇeśa, Śakti, and Śiva, as well as the deception of worshiping Viṣṇu as a Deity bound by the fruits of action (*karma-phala-bādhya-devatā*).

किस ओर निष्कपट वास्तव सत्य है, मानव जाति इसका विचार करे।

Where lies the truth without a trace of duplicity and the unadulterated reality, let humanity (human race) ponder.

पञ्चोपासना में भगवान को विश्व के अन्तर्गत माना जाता है।

In *Pañcopāsanā*, Bhagavān is considered to be within the universe.

उपासक—द्रष्टा तथा उपास्य—दृष्य—उनका ऐसा विचार होता है।

The worshiper (*upāsaka*) is the seer (*draṣṭā*), and the worshipful object (*upāsya*) is the spectacle or visible object (*dṛṣya*) — this is their thought.

किन्तु भागवत दर्शन में उपासक–दृष्य तथा भोग्य होता है तथा उपास्य–द्रष्टा या भोक्ता होते हैं।

But in the philosophy propounded by *Śrīmad-Bhāgavatam*, the worshiper (*upāsaka*) is the *dṛṣya* (the object to be seen or the visible object) and *bhogya* (the object to be enjoyed), and the worshipful object (*upāsya*) is the seer (*dṛṣtā*) or the enjoyer (*bhoktā*).

हमारे पास कुछ भी वस्तु क्यों न आए, हम उसका कृष्ण के साथ सम्बन्ध देखेंगे, क्योंकि प्रत्येक वस्तु ही integral part है।

No matter what object comes to us, we will see its relationship with Lord Kṛṣṇa, because every object is an integral part.

Integer के साथ उसका uniting tie अनुसन्धान करने पर ही वस्तु के प्रकृतस्वरूप का दर्शन होता है।

By researching its uniting tie with the Integer, we perceive the true nature of the object.

प्रश्न–अन्यान्य इन्द्रियों से कर्ण का क्या वैशिष्ट्य है? (Page 45)

Question—What is the speciality of ear as compared to other senses? (Page 45)

उत्तर–इस जगत में अतीन्द्रिय वस्तु के सम्बन्ध में अभिज्ञान एकमात्र कर्ण के द्वारा ही सम्भव है, चक्षु आदि के द्वारा नहीं।

Answer—In this world, knowledge (*abhijñāna*) of the transcendental object is possible only through the ear, not through the eyes or other senses.

कर्ण का द्वार बन्दकर अन्यान्य इन्द्रियों की परिचालना करने पर केवल पूर्व में प्राप्त विचार ही प्रबल रहते हैं तथा आत्मम्भरी (आत्म चेष्टाकारियों) को स्वार्थपर होकर जिस अन्धकार में वे थे, उसी में रहना पड़ता है, जिससे पहले से भी अधिकतर अनर्थों में डूबना पड़ता है।

If the ear is shut and other senses are used, only the previously acquired thoughts remain strong, and the self-centered individuals, being selfish, remain in the same darkness they were in, causing them to sink into the ocean of even greater troubles, unwanted desires and habits than before.

आध्यक्षिक लोगों की धारणा भी नियमित तथा परिवर्तित हो सकती है, यदि वे

श्रवणेन्द्रिय का अनुशीलन करें, यदि वे श्रीचैतन्यवाणी में कर्णनियोग करें।

The perceptions of ordinary people can also be regulated and transformed if they engage their sense of hearing, if they listen to the words and teachings of Śrī Caitanya Mahāprabhu.

किन्तु अन्यान्य इन्द्रियों की परिचालना के द्वारा वे अपने मनोधर्म का त्याग नहीं कर सकते।

However, through the operation of other senses, they cannot renounce their mental inclinations (speculative mental creations, *manodharma*).

परन्तु अप्राकृत शब्द का वक्ता भी अप्राकृत होना आवश्यक है।

However, the speaker of the transcendental word (sound vibration) must also be transcendental.

वक्ता चेतनमय वस्तु होना चाहिए।

The speaker (*vaktā*) should be the sentient object (*chetana-maya vastu*).

अप्राकृत शब्द का वक्ता निष्किञ्चन होता है, वे श्रोता के समस्त किञ्चन (तुच्छ) धर्म त्याग करवाकर उसे निष्किञ्चन बना सकते हैं।

A speaker who pronounces the transcendental sound vibrations (*aprākṛta-śabda*) is free from worldly attachments and material possessions (*niṣkiñcana*). They can help the listener shed all their petty attachments (*kiñcana*) and make him devoid of worldly attachments and material possessions (*niṣkiñcana*) himself.

प्रश्न—जीव की प्रयोजनीय वस्तु क्या है? (Page 46)

Question—What is the object that a living entity should aspire for? (Page 46)

उत्तर—हरिस्मृति ही हमारे लिए सबसे अधिक प्रयोजनीय विषय है।

Answer—Incessant remembrance of Lord Hari (*hari-smṛti*) is the subject matter that is most desirable for a living entity.

वह श्रवण एवं कीर्त्तन के ऊपर निर्भर करती है।

However incessant remembrance of Lord Hari (*hari-smṛti*) depends on hearing (*śravaṇa*) and loud glorification (*kīrtana*) of the name, form, qualities and pastimes of Lord Kṛṣṇa.

श्रवण होने पर कीर्त्तन होता है तथा कीर्त्तन होने पर स्मरण होता है।

When one engages in the hearing (*śravaṇa*) about Lord Kṛṣṇa, then that leads to the loud glorification (*kīrtana*) of Lord Kṛṣṇa, which eventually leads to remembrance (*smaraṇa*) of Lord Kṛṣṇa.

हम असुविधा में पड़े हैं—कई बार यह विवेक हरिकथा में रुचि उत्पन्न करता है।

Many times, we realize that "we have fallen into this material world, which is full of great discomfort"—when such a sense of discrimination and understanding (*viveka*) manifests in the heart of the living entity, it causes a taste for the narrations of Lord Hari's pastimes (*hari-kathā*) to awaken in his heart.

हरिकथा श्रवण करते-करते कीर्त्तन तथा स्मरण होता है।

While listening to the the narrations of Lord Hari's pastimes (*hari-kathā*), the living entity automatically engages in loud glorification (*kīrtana*) and remembrance (*smaraṇa*) of Lord Hari.

जभी हम हरिकीर्त्तन करते हैं, तभी हमें भगवान का स्मरण होता है।

Whenever we engage in the loud glorification of Lord Hari (*hari-kīrtana),* as a result we automatically remember of Bhagavān.

भगवान में स्वाभाविक रुचि उत्पन्न होने का नाम ही आत्मसमर्पण है।

Awakening of the natural taste and attachment for Bhagavān is indeed the self-surrender (*ātma-samarpaṇa*).

जभी हम समझेंगे—**'आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परं, तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥'**

When we understand—

ārādhanānāṁ sarveṣāṁ
viṣṇor ārādhanaṁ param
tasmāt parataraṁ devi
tadīyānāṁ samarcanam

(*Padma Purāṇa*)

अर्थात् हे देवि! समस्त आराधनाओं में विष्णु की आराधना ही श्रेष्ठ है।

Mahādeva told Durgādevī, "O Devi! Of all varieties of worship, worship of Lord Viṣṇu is the best.

परन्तु जो विष्णु की आराधना करते हैं, ऐसे भगवद्भक्तों का संग तथा सेवा और भी श्रेष्ठ है।

However the association and service to the devotees of Bhagavān Viṣṇu who render service to Him is even superior than the direct worship of Him.

तभी हमारा जीवन समर्पित जीवन हो सकेगा।

Our life can become a truly dedicated life if we render immaculate service to the advanced *Vaiṣṇavas* who are the true devotees of Lord Viṣṇu.

हम जगत में बहुत प्रकार के लोगों का दुःसंग कर रहे हैं, जिससे हमारी असुविधा ही बढ़ रही है।

In this world, we are receiving bad association from many types of people, which is not at all favorable for our devotional service; therefore, our discomfort is increasing.

दुःसंग त्यागकर सत्संग करना ही कर्त्तव्य है।

It is our prime duty to give up *duḥ-saṅga* (unfavorable association of materialistic people and impersonalists) and associate with saintly persons instead.

अधोक्षज कृष्ण की सेवा को त्यागकर जो जनसेवा करते हैं, उससे केवल अस्थायी फलमात्र ही पाया जायेगा।

Those who give up the service of Lord Kṛṣṇa, who is Adhokṣaja (the Supreme Personality of Godhead, beyond material sense perception and not perceivable by impure material senses), and instead render service to the public will only receive a temporary benefit.

उससे वास्तव शान्ति नहीं मिलेगी—हमारा चित्त स्थिर या शान्त नहीं होगा।

This will not bestow upon us the real peace—our mind will not become steady or peaceful.

यदि भगवान की कृपा हो, केवल तभी हरिकीर्त्तनकारी साधुओं का निरन्तर संग प्राप्त होता है।

If one has indeed received the mercy of Bhagavān, only then does one gain the continuous association of saintly persons who are engaged in *hari-kīrtana* (the loud glorification of Lord Hari).

रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श आदि विषय सर्वदा ही हमें आकर्षण कर रहे हैं।

Form (*rūpa*), taste (*rasa*), smell (*gandha*), touch (*sparśa*) and sound (*śabda*) are the objects of the senses which always tend to attract us.

उससे बचकर भगवान के संग में किस प्रकार से जाया जाये, यह श्रवण करना चाहिए।

We should hear from the lotus mouths of saintly persons about how to free ourselves from the clutches of the objects of the senses and return to the

association of Bhagavān.

Public service (जनसेवा) तो हम बहुत जन्मों से करते आ रहे हैं।

We have been rendering "Public service" since many births.

पशु भी अपने स्वजाति के प्रति नानाविध कार्य करते हैं, किन्तु मानुष होकर हम क्या उनसे कुछ श्रेष्ठ पद प्राप्त नहीं करेंगे?

Even animals are seen to engage in various activities to bring comfort and relief to their own species. However, will we not achieve a higher position after receiving the exalted human form of life?

इस जगत में सब कुछ सामयिक तथा नश्वर वस्तु है।

All the objects that are seen in this material world are temporary in nature and perishable (prone to undergo dwindling and destruction).

जो वस्तु चिरकाल तक रहती है, क्या हमने उसके सम्बन्ध में आलोचना की?

Did we discuss and ponder about the imperishable object that remains unchanged for eternity?

इस मनुष्य जीवन की सार्थकता यही है कि इससे परजीवन या नित्यजीवन के विषय पर आलोचना की जा सकती है।

The human form of life will considered successful and perfect only when we can discuss and ponder on the topic of life after death (*para-jīvana*) or eternal life (*nitya-jīvana*).

इसी जीवन में हरिकथा सुनी एवं बोली जा सकती है तथा यही भगवान की स्मृति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है।

In this human form of life, we can hear and speak *hari-kathā* [narrations of the holy names, form, qualities and pastimes of Śrī Hari (Kṛṣṇa) and His associates], and this is the only means of attaining the remembrance of Bhagavān.

हरिकथाकीर्त्तन के अतिरिक्त हमारा इस जगत में और कोई कार्य होता नहीं है।

We have no other duty in this material world other than engaging in the loud glorification of *hari-kathā*.

जीवन में या मरण के बाद भी कृष्ण की कथाओं के अतिरिक्त हमारी और कोई गति या कृत्य नहीं है।

Whether we are alive or even after we die, we have no other recourse or duty than to discuss and hear the pastimes of Lord Kṛṣṇa.

सुमेधागण कृष्णकथा कीर्त्तनकारी एवं कुमेधागण अन्याभिलाष-ज्ञानकर्म का अनुष्ठान

करने वाले होते हैं।

The persons who are endowed with higher intelligence sing the narrations of Lord Kṛṣṇa's pastimes and the persons who possess corrupted intelligence engage in the pursuit of fruitive activities (*karma*) or mental speculation (*jñāna*) which can never please Lord Kṛṣṇa.

श्रीवार्षभानवी देवी सर्वदा ही कृष्णनाम उच्चारण करती हैं।

Śrīmatī Rādhārāṇī, known as Śrī Vārṣabhānavī Devī because She is the daughter of Śrī Vṛṣabhānu Mahārāja, always chants the holy name of Lord Kṛṣṇa.

वे कृष्ण सेवा के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं करती हैं।

She does not do anything other than rendering service to Lord Kṛṣṇa.

इसलिये सुमेधाओं में सर्वश्रेष्ठ हुई—श्रीवार्षभानवी, सुमेधाओं में मूल पुरुष हुए—श्रीगौरसुन्दर।

Therefore, Śrī Vārṣabhānavī is the best among the wise personalities endowed with great intelligence, and Śrī Gaurasundara is the original personality among such wise persons.

प्रश्न—हमारा पूर्ण मंगल कैसे होगा? (Page 47)

Question—How can we attain complete auspiciousness? (Page 47)

उत्तर—पूर्ण वस्तु हैं—भगवान श्रीहरि।

Answer—Bhagavān Śrī Hari is complete object (*pūrṇa-vastu*).

कृष्ण दयामय हैं, वे पूर्ण वस्तु हैं, उनकी दया भी पूर्णता प्रदानरूप दया है।

Kṛṣṇa is compassionate, He is the complete object (*pūrṇa-vastu*), His mercy is also a mercy that bestows *pūrṇatā* [perfection and completeness].

पूर्ण वस्तु अपूर्ण को दी जाती है, जिससे अपूर्ण पूर्ण को पा सकते हैं।

The complete object (*pūrṇa-vastu*) is given to the incomplete personality (*apūrṇa*) so that the incomplete personality (*apūrṇa*) can attain the complete object (*pūrṇa-vastu*).

पूर्ण के निकट न जाने पर पूर्ण मंगल नहीं हो सकता।

Complete well-being cannot be achieved if one does not get close to the complete object (*pūrṇa-vastu*).

उससे केवल खण्डानन्द या परिमित आनन्द ही प्राप्त हो सकता है।

If one does approach the complete object (*pūrṇa-vastu*), one will only

attain the *khaṇḍa-ānanda* (partial happiness) or limited happiness by one's endeavors.

पूर्ण वस्तु श्रीहरि दयामय होने के कारण उन्होंने हमें भगवत्कथा श्रवण-कीर्तन का सुयोग दिया है।

Since Śrī Hari is all-merciful, he has given us the opportunity to listen and sing the *bhagavat-kathā* (narrations of Bhagavān's pastimes).

कृष्ण कथाकीर्त्तन के बिना जीव का चित्त निर्मल नहीं हो सकता, उसे नित्यमंगल का अनुसन्धान नहीं मिल सकता।

Without *kathā-kīrtana* (without the loud glorification of the name, form, qualities and pastimes) of Lord Kṛṣṇa, the mind of a living being cannot become pure; it cannot find eternal auspiciousness.

कृष्ण आकर्षक वस्तु हैं।

Lord Kṛṣṇa is an attractive object (*ākarṣaka-vastu*).

उन आकर्षक की कथा श्रवण-कीर्त्तन करने पर उनके अनुग्रह से हम अति सहज रूप में ही उनके प्रति आकृष्ट हो सकते हैं, तभी हमारा पूर्णमंगल होता है।

By listening to and singing the glorification and pastimes of this supremely attractive personality, we can very easily be attracted towards Him by His grace, and only then we achieve complete welfare and auspiciousness.

प्रश्न—भगवद्विमुख जीव सर्वप्रथम क्या होकर इस जगत हैं में आया?

Question—What particular form or body did the living entity who is averse to Bhagavān (*bhagavad-vimukha jīva*) attain when it first came into this material world from *brahma-jyoti* (the line of demarcation between the material world and the spiritual world)?

उत्तर—भगवद्विमुख जीव सर्वप्रथम ब्रह्मा होता है, उसके बाद मनुष्य होता है।

Answer—The living entity who is averse to Bhagavān (*bhagavad-vimukha jīva*) first comes to this material world as Lord Brahmā (the secondary creator the world). Afterwards he becomes a human being.

पतित जीव सर्वप्रथम विरिञ्चि (ब्रह्मा) हुए है।

The fallen living entities (*patita-jīva*) first became Viriñci (Lord Brahmā)

माया के भोक्ता या कर्ता होने जाकर अनेक जीव ब्रह्मा के पुत्र हुए।

Many living entities became sons of Lord Brahmā by becoming the so-called enjoyer (*bhoktā*) of illusory potency of Lord Kṛṣṇa (*māyā*) or due to

maintaining the false ego of being the doer (*kartā*) under the influence of *māyā*.

उनमें से किसी किसी को प्रजा सृष्टि का भार प्राप्त हुआ।

Some one among them got the responsibility of giving birth to the the living entities by becoming the progenitor (*prajā-pati*).

जब भी जीव का भोक्ता अभिमान उदित होता है, तभी वह माया में आबद्ध हो पड़ता है।

Whenever the living entity develops the false pride of being the enjoyer (*bhoktā*) of material world, it becomes trapped in *māyā* (the illusory potency of Bhagavān Kṛṣṇa).

अचेतन राज्य (जड़ जगत) में प्रभु होने की चेष्टा करने पर माया का दासत्व ही प्राप्त होता है।

By trying to be the master or lord of the insentient kingdom (dull material world) one only attains slavery of *māyā* (the illusory potency of Lord Kṛṣṇa).

प्रश्न—क्या पाप और अपराध एक ही चीज़ हैं? (Page 48)

Question—Are sin (*pāpa*) and offence (*aparādha*) the same thing?

उत्तर—नहीं। सामाजिक नीति को भंग करने से 'पाप' होता।

Answer—One commits 'sin' when one knowingly or unknowingly volatilizes the social policies and breaks the social norms.

तथा विष्णु-वैष्णवों के चरणों में अवज्ञा होने पर 'अपराध' होता है।

And when there is disrespect towards the lotus feet of Lord Viṣṇu and His devotees (*Vaiṣṇavas*), it is considered an 'offense (*aparādha*)'.

पाप से अपराध करोड़ों गुणा अधिक भयंकर होता है।

An offense (*aparādha*) is millions of times more severe and terrible than a sin (*pāpa*).

पाप तो प्रायश्चित्त से नष्ट हो जाता है, किन्तु अपराध प्रायश्चित से भी नहीं जाता।

Sin is destroyed by undergoing the process of atonement as prescribed in the scriptures, but offence (*aparādha*) does not go away even after undergoing atonement.

अपराध तो केवल पतितपावन श्रीगौरनित्यानन्द के भुवनमंगल नाम से ही दूर भागता है।

Śrī Gaurāṅga Mahāprabhu and Śrī Nityānanda Prabhu are the saviors and deliverers of the fallen persons. An offense can only be dispelled by sincerely chanting Their holy names which bring auspiciousness to the entire world.

प्रश्न—क्या भक्त सर्वत्र ही भगवान का दर्शन करता है? (Page 48)

Question—Does a devotee see Bhagavān everywhere? (Page 48)

उत्तर—निश्चय ही।

Answer—Certainly.

जल में, स्थल में, अन्तरीक्ष में, प्रत्येक स्थान में, अणु-परमाणु में जिन भगवान का अधिष्ठान है,

Bhagavān resides in water, on land, in the sky, in every place, in every atom and molecule.

जो अन्तर्यामी रूप से सर्वत्र ही विराजमान हैं,

He resides in the hearts of all the living entities and is present everywhere in the form of Antaryāmī (the indwelling Supersoul or Paramātmā).

वे भक्तों के दिव्यदर्शन में नित्यकाल प्रतिभासित होते हैं।

He always manifests in the divine vision of the devotees.

किन्तु कनक-कामिनी तथा प्रतिष्ठा में आसक्त अभक्त सम्प्रदाय के अदिव्य जड़ चक्षुओं के द्वारा उनका दर्शन नही होता।

But, He cannot be seen by the materialistic (non-divine), inert (dull) eyes of the non-devotee sect who are enamored with gold, women and prestige.

वे लोग भक्तों के दर्शन में भी विश्वास नहीं करना चाहते।

The members of the non-devotee sect do not wish to believe in the transcendental vision of the devotees who behold Bhagavān by their eyes that are anointed by the salve of love.

इसीलिए भक्तों के वाक्यों को सत्य करने वाले भगवान श्रीनृसिंहदेव ने स्फटिक खम्बे से प्रकट होकर इस सत्य को प्रमाणित कर दिया कि भक्त को सर्वत्र ही भगवान का दर्शन होता है।

Therefore, Bhagavān Śrī Nṛsiṁhadeva, who makes the words of the devotees come true, manifested from a crystal pillar to prove the truth that a

devotee sees Bhagavān everywhere.

श्रीनृसिंहदेव भक्त विघ्नविनाशक हैं।

Lord Śrī Nṛsiṁhadeva is the destroyer of obstacles for the devotees.

प्रश्न—क्या भक्त का संसार तथा बद्धजीव का संसार समान होता है? (Page 49)

Question—Can the stay of the devotee in this material world characterized by the cycle of birth, disease, old age and death is the same as the stay of the conditioned living entity?

उत्तर—कभी नहीं।

Answer—Never.

कनक-कामिनी तथा प्रतिष्ठा—इन तीन प्रकार की योषितों की (स्त्रियों की) भोग की आशा जिनके हृदय में है, वे 'योषित्संगी' हैं।

kanaka-kāminī tathā pratiṣṭhā—ina tīna prakāra kī yoṣitoṃ kī (striyoṃ kī) bhoga kī āśā jinake hṛdaya meṃ hai, ve 'yoṣitsaṃgī' haiṃ.

Those who have in their hearts the hope and aspiration of enjoying the three kinds of *yoṣitās* (women or enjoyable objects)—*kanaka* (golden), *kāminī* (members of fair sex) and *pratiṣṭhā* (name, fame, adoration and prestige), are '*yoṣit-saṅgī*' (those who associate with sense objects).

विषयी तथा योषित्संगी एक ही बात है।

viṣayī tathā yoṣitsaṃgī eka hī bāta hai.

The *viṣayī* (sense gratifier) and *yoṣit-saṅgī* (one who associates women and seeks to enjoy other enjoyable objects such gold and prestige) are the same thing.

विषयी उक्त तीनों प्रकार की योषित को अपने इन्द्रियतर्पण के विषय के रूप में ग्रहणकर भगवान की सेवा से विमुख होते हैं।

By accepting the above-mentioned three types of *yoṣitas* as the object of satisfying their senses, the sense gratifiers turn away from the service of God.

भक्त कभी भी उन्हें अपनी सेवा में नियुक्त नहीं करते, उनके द्वारा वे भगवान की सेवा करते हैं।

Devotees never employ them (the above-mentioned three types of *yoṣitās* or enjoyable objects) in their own service. Rather they meticulously endeavor to serve Bhagavān through the enjoyable objects such as gold, women and prestige.

चित्त-वृत्ति को अपने सुख में अथवा भगवान की सेवा से विमुख व्यक्ति को सुखी करने की चेष्टा में नियुक्त न कर भगवान तथा भक्तों के सुख के लिए नियुक्त करने पर ही चिद्-वृत्ति प्रकाशित होती है,

One must never engage the tendency of the heart (*citta-vṛtti*) in trying to bring happiness to the persons who are averse to render service to Bhagavān. Rather one should direct one's *citta-vṛtti* (flow of thoughts or feelings and disposition of heart) in bringing happiness and satisfaction to Bhagavān and His devotees. Then only *cid-vṛtti* (the function or activity of true knowledge) brightly manifests in one's heart.

तभी सेवा होती है, तभी भक्त हुआ जाता है, अन्यथा अभक्त होना पड़ेगा। संसार के प्रति आसक्ति सम्पूर्ण रूप से वर्जनीय है।

Only then can one render service, only then can one become a devotee, otherwise one will have to become a non-devotee. Attachment to the world is to be completely avoided.

आचार्यों का विवाह करना तथा बद्धजीव का संसार-भोग एक समान नहीं है।

The marriage of an *ācārya* and the worldly enjoyment of a conditioned soul are not the same.

निष्किञ्चन भगवद्भक्त जिस किसी भी वर्ण में या किसी भी आश्रम में रहें, वे उस वर्ण या आश्रम के अन्तर्भुक्त नहीं हो जाते।

A devotee of Bhagavān who is devoid of material possessions and whose only possession is the lotus feet of the Bhagavān, regardless of which *varṇa* (social classification) or *āśrama* (stage of life) he belong to, does not become confined by that *varṇa* or *āśrama*."

24 घण्टे में 24 घण्टे वे हरिसेवा में नियुक्त रहते हैं।

They remain engaged in the service of Lord Hari 24 hours a day.

प्रश्न—क्या हरिकीर्तन महामंगलकर है? (Page 49)

Question—Is *hari-kīrtana* [the loud chanting of the names of Lord Hari (Kṛṣṇa)] supremely auspicious? (Page 49)

उत्तर—निश्चय ही। निर्जन भजन में पद-पद पर असुविधा है।

Answer—Certainly. Solitary worship has many inconveniences at every step.

हरिकथा कीर्त्तन करने पर दूसरे भी सुन सकते हैं।

When one loudly discuses the pastimes of Lord Hari, others can also listen.

अतः कीर्त्तन में दर्शन न आत्ममंगल तथा श्रवणकारी का मंगल—अपना उपकार तथा परोपकार दोनों ही हो जाते हैं।

Therefore, in the singing of the Lord's glories, there is the benefit of seeing and hearing, bringing auspiciousness to both oneself and others. It results in both self-benefit and the benefit of others.

कीर्त्तन करते समय अपना भी श्रवण हो जाता है।

While one performs the loud glorification (*kīrtana*) of the name, form, qualities and pastimes of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa by one's tongue,, one also listens to that loud glorification oneself by one's ears.

कीर्त्तन से तीन प्रकार की हरिसेवा होती है—कीर्त्तन में हरिसेवा, अपने श्रवण से हरिसेवा, दूसरे को श्रवण करने के लिए सुयोग—दानरूप हरिसेवा।

"Through *kīrtana* (loud glorification), one renders three types of devotional service to Lord Hari—(1) devotional service to Lord Hari through the *kīrtana* (loud glorification) of Bhagavān's name, form, qualities and pastimes, (2) devotional service to Lord Hari through one's aural reception to the *kīrtana* (loud glorification) of Bhagavān's name, form, qualities and pastimes and (3) devotional service to Lord Hari by granting others a golden opportunity to listen to the *kīrtana* (loud glorification) of Bhagavān's name, form, qualities and pastimes."

इसके अतिरिक्त कीर्त्तन के प्रभाव से स्मरण भी होता है।

In addition, when one performs *kīrtana* (loud glorification) of Bhagavān's name, form, qualities and pastimes, as a result one is also able to remember Bhagavān's name, form, qualities and pastimes.

अतः स्मरणरूप हरिसेवा भी साथ में हो जाती है।

Thus, devotional service to Lord Hari (*hari-sevā*) in the form of His remembrance (*smaraṇa*) also takes place simultaneously.

प्रश्न—वैराग्य किसे कहते हैं? (Page 50)

Question—What is called *vairāgya* (renunciation)? (Page 50)

उत्तर—भगवान के अतिरिक्त अन्य वस्तु में आसक्त न होकर भगवान के अनुशीलन में व्यस्त रहना ही वैराग्य है।

Answer—Renunciation means (1) not becoming attached to any material object and (2) to remain totally engaged cultivating pure devotion towards the lotus feet of Lord Kṛṣṇa.

किन्तु ऐसा न होकर फल्गुवैरागी होने पर मुश्किल में पड़ना पड़ता है।

But instead of doing so, if one becomes a false renunciant, then one will encounter many difficulties on the path of devotional service.

इससे स्वयं ही स्वयं की वञ्चना करना होगा।

This way, one ends up deceiving oneself by one's own actions.

जिस प्रकार यदि लोहा लोहार से चालाकी करने जाये, तो उसे स्वयं ही ठगना पड़ेगा।

Just as if iron tries to deceive the blacksmith, it will end up deceiving itself.

इसलिए कहता हूँ कि गृह में रहो या वन में रहो, सब समय भगवान का अनुशीलन करो।

Therefore, I say, whether you live at home or in the forest, always engage in cultivating pure devotional service of Bhagavān.

भगवान की कथाओं की आलोचना करने पर अन्य विषयों से आसक्ति छूट जायेगी।

By discussing the sweet pastimes of Bhagavān in the company of loving devotees, one's strong attachment to other material objects will gradually diminish and will finally vanish altogether.

प्रश्न—भगवान का आश्रय कैसे होगा?

Question—How can one take shelter of Bhagavān?

उत्तर—मायाश्रय तथा भगवदाश्रय एक ही चीज़ नहीं है।

Answer—Taking shelter of illusory potency of Bhagavān Kṛṣṇa called *māyā* (*māyāśraya*) and taking shelter of Bhagavān (*bhagavadāśraya*) are not the same thing.

दोनों का आश्रय एक ही साथ नहीं हो सकता।

One cannot take shelter both Bhagavān and His *māyā* at the same time.

या तो मैं मायाश्रित—गृहाश्रित या फिर कृष्णाश्रित ही हो सकता हूँ।

Either I can take shelter of (1) the illusory potency (*māyā*) of Bhagavān Kṛṣṇa or household life based on sense gratification or (2) of Lord Kṛṣṇa.

कृष्ण के प्रति आसक्त या कृष्ण की सेवा के प्रति आसक्त व्यक्ति ही कृष्णाश्रित है।

A person who is attached to Lord Kṛṣṇa or attached to the service of Lord Kṛṣṇa is dependent on Kṛṣṇa (*kṛṣṇa-āśrita*).

इसीलिए प्रह्लाद महाराज कह रहे हैं—अन्धकूपसदृश गृह को त्यागकर साधु के निकट गमनपूर्वक भगवान का आश्रय ग्रहण करो।

That is why Prahlāda Maharaja is saying—Leave this household life which is like a dark blind well, go to a saintly person and take shelter of Bhagavān.

दुर्बलतावशत: यदि गृह नहीं छोड़ पा रहे हो, तो गृह के प्रति आसक्ति त्यागकर साधुसंग में भगवान के आश्रित हो जाओ।

If you are unable to leave your household life due to weakness, then give up your attachment to household life and take shelter of Bhagavān in the company of saintly persons.

तभी भगवदाश्रय होगा और तभी मंगल भी होगा।

Only then will one be able to take shelter of Bhagavān and only then will one attain auspiciousness.

गृहासक्ति रखकर तथा गृहाश्रित रहकर भगवान का आश्रय ग्रहण करने का अभिनय करने पर भगवान की सेवा की प्रवृत्ति नहीं जागेगी तथा हमारा वास्तव कल्याण नहीं होगा।

If we pretend to have taken refuge in Bhagavān while being attached to the household life and dependent on the household, the tendency to serve God will not be awakened and our real welfare will not be achieved.

इससे हमें संसार के विषयों में ही डूबना होगा।

Due to this we will have to immerse ourselves in worldly matters.

मैं यदि भगवान का आश्रय ग्रहणकर घर में मत्त रहा, स्त्री-पुत्र-कन्या आदि की सेवा या उनके सुखविधान को मैंने अपना व्रत बना लिया—गृह सेवा को ही बड़ा मानकर भगवान की सेवा से उदासीन रहा, तो मुझे भगवान का आश्रय कैसे प्राप्त होगा?

If, after taking refuge in Bhagavān, I remain absorbed in household life, make it my vow to serve my wife, son, daughter, etc., or ensure their well-being, and consider service to the members of the household to be more important, and remain indifferent to the service of Bhagavān, then how will I

attain the refuge of Bhagavān?

भगवान की सेवा करने से तो भगवत्सेवक का अभिमान उत्पन्न होगा। किन्तु क्या ऐसा हो रहा है? सेवा का फल—सेवा है।

Serving Bhagavān will give rise to the real ego of being the devotee of Bhagavān. But is this happening? The reward of devotional service is more devotional service.

सेवा करने पर उत्तरोत्तर सेवा कर करने की व्याकुलता बढ़ेगी।

By engaging in devotional service, one's eagerness to perform more devotional service will progressively increase.

मैं क्या कर रहा हूँ, मैंने किसका आश्रय कर लिया है, मेरा चित्त किस ओर धावित हो रहा है, इसे अच्छी प्रकार से देखना चाहिए। अन्यथा हम ठगे जायेंगे।

I must carefully observe what I am doing, whom I have taken refuge in, and where my mind is heading. Otherwise, I will be deceived.

विवाह के समय कन्या को पिता का आश्रय छोड़कर पति का आश्रय ग्रहण करना होता है। उस समय उसका गोत्र भी बदल जाता है।

At the time of marriage, a daughter has to leave her father's shelter and has to take shelter of her husband. During this time, her *gotra* (family lineage) also changes.

उस समय पितृगृह के प्रति आसक्ति नहीं रहती।

At that time, she does not carry attachment to the father's home anymore.

जो जिसे आश्रय करता है, उसका संग तथा सेवा करते-करते उसके प्रति ही प्रीति हो जाती है।

When one takes shelter of a certain person, then through the constant association and by rendering loving service, one develops love and affection for that person.

प्रश्न—वर्तमान में हमारी रुचि किस दिशा में है? (Page 51)

Question: In which direction is our interest currently inclined? (Page 51)

उत्तर—हमने पूर्व-पूर्व समय में जिन समस्त विचारों को श्रवण किया हुआ है, उनमें ही हमारी रुचि होती है।

Answer—Our interest lies in the thoughts and ideas that we have previously heard in the past.

जिन विचारों को हमने सुना नहीं है, उनके प्रति हमारी रुचि नहीं होती।

We have no interest in the thoughts and ideas we have not heard.

वर्तमान में हम भगवान से बहिर्मुख हैं। तभी (जड़) जगत की कथाओं में ही हमारी रुचि है। भगवान की कथा हमें रुचिकर प्रतीत नहीं होती।

Currently, we are turned away from Bhagavān. That is why we are interested only in the topics concerning the material world. The topics related Bhagavān do not seem appealing and tasteful to us.

जड़ जगत के रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श ने हमारे ऊपर अपना अधिकार जमाकर हमें विषयों में नियुक्त कर रखा है।

The forms, tastes, smells, sounds, and touches of the material world have taken control over us and engaged us in sense objects.

हम केवल इन्द्रिय तृप्ति (इन्द्रियों की प्रसन्नता) चाहते हैं।

We only seek sensory gratification (the pleasure of the senses).

जो जितने परिमाण में हमारी इन्द्रियों को तृप्त कर सकता है, वह उतने ही परिमाण में हमें प्रिय होता है।

We love any person to the degree he or she is able to satisfy our senses.

हम शीघ्र फल प्रदान करने वाले अथवा आपात-रमणीय (केवल वर्त्तमान समय के लिए मनोरम लगनेवाले) विषयों का आदर करते हुए संसार में नित्यकाल ऐसी इन्द्रिय-तृप्ति कर जीवन यापन करने में ही व्यस्त हो रहे हैं।

We are only respect the topics that give quick result and which appeal to our senses instantly at the present moment. Thus we are busy in spending our life by always satisfying our senses in this material world.

हमारी बुद्धि वृत्ति उन्नत-स्तर (मनुष्यत्व) की ओर जाने के स्थान पर क्रमशः निम्न स्तर (पशुत्व) की ओर जा रही है।

Our intellect is gradually moving towards a lower state (animality, characteristics suitable to a beast) instead of advancing towards a higher state (humanity, qualities found in a cultured human being).

अतएव वर्तमान में हमारी रुचि (उस रुचि के अनुरूप हमारी सभी चेष्टाएँ) भगवान से विमुख दिशा की ओर हैं।

Therefore, our current interest (and all our actions in line with that interest) are directed away from Bhagavān.

हम साधारणतः जो समस्त बातें कहते हैं, वे (शब्द समूह) गुणजात (गुणों से उत्पन्न) अथवा जड़ होती हैं।

Generally, all the topics we discuss consists of the words emanating from the modes of material nature or are material in nature.

किन्तु भगवद्भक्तगण जो समस्त कथाएँ कहते हैं, वे जड़-शब्द नहीं होते बल्कि निर्गुण होते हैं।

However, the topics discussed by the devotees of Bhagavān are not dull material words but are transcendental and uncontaminated by the three modes of material nature.

निर्गुण-वस्तु अपनी इच्छा से इस जगत में आगमन कर सकती है।

A transcendental object which is uncontaminated by the three modes of material nature can enter this material world according to its own will.

वह प्रपंच (जड़ जगत्) में अवतीर्ण होती है।

It descends into the material world made of five gross elements such as earth, water, fire, air and ether.

इससे निर्गुण वस्तु के निर्गुणत्व की कोई हानि नहीं होती।

This does not affect the transcendence of the transcendental object which is devoid of material qualities.

उन शब्दों के भीतर ऐसी अलौकिक शक्ति होती है कि वह कानों में प्रविष्ट होकर मुनष्य की चेतनता को प्रस्फुटित (विकसित) कर देती है।

The topics discussed by the devotees of Bhagavān consist of the words endowed with a transcendental power. When those divine words enter the ears, they awaken and develop the consciousness of the person.

वह शब्द हमें 'विरजा-ब्रह्मलोक' (इस ब्रह्माण्ड की सीमा) को भेदकर वैकुण्ठ में ले जा सकते हैं।

vaha śabda hameṃ 'virajā-brahmaloka' (isa brahmāṇḍa kī sīmā) ko bhedakara vaikuṇṭha meṃ le jā sakate haiṃ.

Those words can take us to Vaikuṇṭha by helping cross Virajā and Brahma-loka by helping us go beyond the limits of the material universe.

जो शब्द परजगत से इस जगत में अवतीर्ण होते हैं, वे ही हमें वैकुण्ठ में ले जा सकते हैं

Only those words that descend from the transcendental realm into this world can take us to Vaikuṇṭha.

और जो शब्द जड़-आकाश (जड़ जगत) से उत्पन्न होकर, कुछ क्षण जड़ -आकाश में रहकर, जड़-आकाश में ही लय को प्राप्त हो जाते हैं, वे शब्द हमें नरक के मार्गपर ले जाते हैं।

And those words that originate from the material realm, remain in the material realm for a while, and ultimately dissolve back into the material realm, lead us on the path to hell.

वर्तमान में इस जड़-जगत की कथाओं में ही हमारी रुचि है, तभी हमारी अशान्ति का अन्त नहीं हो रहा है।

"Currently, our interest lies in the stories of the material world, which is why our restlessness continues unabated."

यदि वैकुण्ठ-कथा में हमारी रुचि होगी, तभी हमारा मंगल होगा, अन्यथा नहीं।

If we have an interest in the stories of Vaikuṇṭha, only then will our well-being be ensured; otherwise, it will not.

प्रश्न—हम हरिकथा श्रवण करके भी उसके अनुसार आचरण क्यों नहीं कर पा रहे हैं?

(Page 52)

Question—Despite hearing the *hari-kathā* (narrations of pastimes of Bhagavān Hari and His devotees), why are we not able to lead our life as per the teachings embedded in that *hari-kathā*? (Page 52)

उत्तर—जो भाग्यवान् हैं, वे ही हरिकथा श्रवणकर उसे समझ सकते हैं और (समझकर) उसके अनुसार आचरण करने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं।

Answer—Only those who are fortunate can listen to *hari-kathā* (the narrations of pastimes of Bhagavān Hari and His devotees), understand the teaching embedded in *hari-kathā* and receive the great good fortune as per those teachings.

जो भाग्यहीन हैं, वे ऐसा समझते हैं कि हमने कथा श्रवण की है। किन्तु यथार्थ में उनके द्वारा हरिकथा श्रवण करना नहीं हुआ। अतएव वे वञ्चित ही हुए।

Those who are unfortunate may believe that they have heard the *hari-kathā*, but in reality, they have not truly listened to *hari-kathā*. Therefore, they remain deprived (cheated).

यदि हम भाग्यक्रम से भजनीय वस्तु की सेवा करने के लिए प्रवृत्ति-विशिष्ट (उन्मुख) हों, तभी हमारे कानों में कथा प्रवेश करेगी, हम कथा श्रवण एवं ग्रहण कर सकेंगे।

If we are inclined by our great fortune towards the service of the worshipable object, only then will the *hari-kathā* enter our ears, and we will be able to listen to and understand it.

(फिर भी) जिसकी जैसी अवस्था है, उसे उसी अवस्था से ही उन्नत होना होगा, अच्छा होना होगा।

Nevertheless, one must progress from one's current state and strive to improve one's condition to a level of higher consciousness.

प्रतिमुहूर्त्त दैवी-माया हमें भगवान से विमुख करने की चेष्टा कर रही है और अज्ञ होने के कारण हम उसी माया को गले का हार बनाकर रखने में व्यस्त हैं।

Every moment, divine illusory potency (*daivī-māyā*) of Lord Kṛṣṇa tries to divert us away from Bhagavān, and due to our ignorance, we are busy adorning ourselves with that very illusory potency as a garland around our neck.

इसीलिए कह रहा हूँ—सावधान होओ, बुद्धिमान् होओ, और मूर्ख मत बनो।

Therefore, I say—be cautious, be wise, and do not act foolishly.

जीवन्त (जो वर्तमान में जीवित हैं, ऐसे) साधु का संग करो।

Associate with living saintly persons who are currently enacting divine pastime of fearless preaching on this planet.

तेजस्वी साधु के संग के प्रभाव से तुम्हारी सब असुविधाएँ हट जायेंगी।

All your difficulties and problems will evaporate by the influence of the powerful association of the effulgent saintly persons.

हृदय को बल प्राप्त होगा।

Your heart will gain strength.

किन्तु, जिस मुहूर्त्त हमारे रक्षाकर्त्ता नहीं रहेंगे, सत्संग का अभाव होगा, उसी मुहूर्त्त में ही हमारी पारिपार्श्विक (भगवत् सेवा के लिए उपयोगी) समस्त वस्तुएँ शत्रु होकर हमारे ऊपर आक्रमण करेंगी।

But at the moment when our protector and guardian are no more in this world and there is a lack of association with the saintly persons, at that very moment, all the paraphernalia our supportive (useful for divine service) things will turn into enemies and attack us.

जिस समय हम साधु के निकट हरिकथा श्रवण नहीं करेंगे, निष्कपट होकर साधु-गुरु की सेवा नहीं करेंगे, उसी समय सुयोग पाकर माया हमें ग्रास कर लेगी।

When we do not listen to Lord Hari's pastimes in the company of the saintly persons (*sādhus*), and do not serve the saintly persons or *guru* (spiritual master) with sincerity, at that very moment, *māyā* (the illusory potency of Bhagavān Kṛṣṇa) will devour us upon finding a good opportunity.

अतएव जहाँ हरिकथा हो रही है, वास्तव में ही चेतन से चेतनमयी (निर्गुण तथा वीर्यवती) हरिकथा प्रकाशित हो रही है, वहाँ मनोयोग रखना ही हमारा कर्त्तव्य है।

Therefore, where Bhagavān Śrī Hari's pastimes are being narrated, and where truly transcendental (sentient or living) pastimes which are beyond the three modes of material nature (*nirguṇa*) are being revealed from the sentient source, it is our duty to remain attentively focused there.

किन्तु इसके विपरीत जगत के अनुस्वार-विसर्ग (शब्द उच्चारण की परिपाटी) को लेकर सिर और जिह्वा का व्यायाम करने के लिए लाखों दल हैं।

However, on the contrary, there are countless groups engaged in exercising the head and tongue through the practice of worldly sounds and pronunciations of *anuvsvāra* and *visarga*.

किन्तु, उन्हें परव्योम से आविर्भूत चेतनमय शब्द के तात्पर्य की उपलब्धि नहीं होगी।

However, they will not attain realization of the essence the divine sentient (living) sound vibrations that have manifested from the transcendental realm of Vaikuṇṭha.

वे हरिकथा नहीं बोल सकते।

They cannot speak *hari-kathā* (pastimes of Lord Hari).

उनकी कथा ग्रामोफोन (Recorder) की कथा के समान है।

Their narratives are akin to those of a gramophone (recorder).

उनकी कथा श्रवण करके मंगल नहीं होगा, सत्य की उपलब्धि नहीं होगी, अपितु

विषयों में ही डूबना होगा।

Listening to their narratives will not bring auspiciousness or the realization of truth; instead, it will only lead to immersion in materialistic pursuits.

प्रश्न—किसी व्यक्ति का प्रारम्भ में सत् उद्देश्य था, कुछ समय बाद उस व्यक्ति का पुनः असत् उद्देश्य अथवा संसार के प्रवृत्ति क्यों हो जाती है? (Page 52)

Question—Initially some person wants to pursue the devotional service of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa who is eternal. However after some time he develops attachment for material world, in other words he develops the attraction for pursuing materialistic endeavors which do not yield a permanent result. What is the reason behind this? (Page 52)

उत्तर—उसने निर्गुण हरिकथा में समय नहीं दिया अथवा वह श्रवण करने का ढोंग करके उस हरिकथा के प्रति अनमना (उदास) ही रहा।

Answer—He did not spend time in listening to *nirguṇa hari-kathā* (the transcendental pastimes of Bhagavān Hari which are beyond the three modes of material nature), or he pretended to listen that *hari-kathā.* while while remaining disinterested in it.

उसने आपात्-प्रयोजनीय सुख की चेष्टा से विरत होने की कभी चेष्टा नहीं की।

He never made an effort to abstain from the pursuit of temporary, immediate pleasures.

वह असत् लोगों का परामर्श सुनकर इन्द्रिय-सुख के लिये ही व्यस्त रहा।

He remained occupied with seeking sensory pleasures by following the advice of materialistic people.

यदि भगवान के श्रीचरणों का आश्रय ग्रहण करूँ, तो जागतिक विद्या का अर्जन करने अथवा नहीं करने, बल रहने अथवा नहीं रहने से कोई असुविधा नहीं होगी।

If I take refuge in Bhagavān's lotus feet, there will be no difficulty whether I acquire worldly knowledge or not, or whether I have strength or not.

जीव निर्गुण वस्तु है।

The living entity (*jīva*) is transcendental by nature and devoid of three modes of material nature.

किन्तु जब जीव स्वयं को जगत के गुणों से आबद्ध वस्तु समझता है, तब उसकी इस जगत के प्रति आसक्ति होती है।

However, when the living entity perceives itself as being bound by the modes of material nature, it develops attachment to this world.

प्रश्न—भगवद्भक्तगण इस जगत में क्यों आते हैं? (Page 54)

Question—Why do devotees of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa come into this world? (Page 54)

उत्तर—भक्तगण जगत जीवों का उपकार करने के लिये ही इस जगत में आते हैं।

Answer—Devotees of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa come into this world to benefit and help the living entities living in this miserable material world.

उनका अपना कोई जागतिक कर्त्तव्य नहीं है।

They have no worldly duty of their own.

उन्हें इस जगत में आने की कोई आवश्यकता नहीं है।

They have no need to come into this world.

जीवों की विपरीत रुचि को परिवर्त्तित करना ही सर्वापेक्षा दयामय भक्तों का एकमात्र कर्त्तव्य है।

The most compassionate devotees have only one duty: to transform the contrary inclinations of conditioned living beings who have become averse to the devotional service of Lord Kṛṣṇa and to make them favorable to the unalloyed devotional service of Lord Kṛṣṇa.

यदि हम मूल विषय से च्युत हो जायें, भगवान के प्रति विमुख रहें, साक्षात् भगवत्सेवा युगधर्म हरिनाम संकीर्त्तन के प्रति उदासीन रहें, तो भूखे को अन्नदान, मूर्ख को विद्यादान आदि सब पशुश्रम (वृथा परिश्रम) हो जाता है।

If we deviate from the primary subject matter, remain averse to Bhagavān, remain indifferent to the duty of congregational chanting of the holy names of Bhagavān Hari which is His direct service and, then all acts like feeding cooked grains the hungry and educating the ignorant become futile labor performed by a beast of burden like donkey.

प्रश्न—क्या कामिनी-काञ्चन भक्ति बाधक हैं? (Page 54)

Question—Are wealth and women obstacles to one's progress in devotional service? (Page 54)

उत्तर—हाँ, निश्चय ही बाधक हैं।

Answer—Yes, they are certainly great obstacles in to one's progress in devotional service.

कनक, कामिनी, प्रतिष्ठा—ये जागतिक प्रिय वस्तुएँ वास्तव में एक-एक प्रलोभन देनेवाली वस्तुएँ मात्र हैं।

Kanaka (Wealth and gold), *kāminī* (attractive women), and *pratiṣṭhā* (name, fame, adoration and prestige)—these worldly attractions are indeed individual temptations.

हम बद्धजीव प्रतिमुहूर्त्त भोग की वस्तुओं के प्रति आकृष्ट हो रहे हैं।

We, the conditioned souls, are constantly being attracted to objects of sense enjoyment every moment.

माया प्रलोभन दिखाकर हमें आबद्ध कर रही है।

Māyā (The illusory potency of Lord Kṛṣṇa) entices us with temptations, binding us further.

वन में स्त्री-हाथी रूपी प्रलोभन के द्वारा पुरुष-हाथी को वश में करके श्रृंखला में

आबद्ध करने के समान माया स्त्री-संगादि का लोभ दिखाकर जीवों को संसार में आबद्ध कर रही है।

Māyā binds living entities to the miserable material world full of repeated transmigration by showing the allure of association with women, much like how a female elephant is used to tempt and capture a male elephant in the forest, chaining it in captivity.

असद्वस्तु को सत्यवस्तु समझकर, दुःखकर संसार को सुखकर समझकर जीव उसी की ओर धावित हो रहे हैं।

Misunderstanding the unreal object as real object, and perceiving the miserable material world as pleasurable, living beings are rushing towards it.

माया ने सांसारिक क्षणिक सुखों को जीवों की वञ्चना करने के लिये ही रख रखा है।

Māyā has placed the temporary pleasures of the world solely to deceive living entities.

जगत में जो कुछ हमारे भोग-चक्षुओं को सुन्दर, अच्छा प्रतीत होता है, वे सब बड़िश (मछली फँसाने की बंसी) है।

In this world, everything that appears beautiful and desirable to our eyes searching for sense objects is merely a bait (like the earthworm placed upon a hook attached to the bamboo fishing rod) used to trap us.

जो भोगी होंगे, वह वञ्चित होंगे, आबद्ध होंगे।

Those who indulge in sensual pleasures will be deceived and bound by the shackles of *māyā*.

'खाऊँगा, पिऊँगा और नरक जाऊँगा'—यह बुद्धि मनुष्यजाति को ग्रास कर रही है, इससे अधिक लज्जा का विषय और क्या हो सकता है?

"'I will eat, drink, and go to hell'—this mentality is devouring humanity. What could be more shameful than this?"

प्रश्न—क्या जगत में विशुद्ध साधु का आदर है? (Page 55)

Question—Is there respect for a pure saintly person in the world? (Page 55)

उत्तर—विशुद्ध वस्तु दुर्लभ है, वह सहजता से प्राप्त नहीं होती। इसीलिए विशुद्ध वस्तु का आदर कम है।

Answer—A pure object is rare and not easily obtained. Therefore, the respect for a pure object is limited.

जो समस्त साधु जीवों को विपथगामी (भगवान से विमुख) नहीं करके हरिकथा-कीर्त्तन के द्वारा भगवान के प्रति उन्मुख करने में व्यस्त रहते हैं, उन सभी साधुओं का आदर यहाँ (इस जगत में) नहीं है।

Saintly persons (*Sādhus*) who are engaged in directing all living entities towards Bhagavān through the narration and chanting of His glories, rather than leading them astray, are not respected in this world.

जो धर्म के नाम पर लोगों को विपथगामी कर रहे हैं, उनके निकट जाकर वञ्चित होना ही वर्त्तमान काल में एक युगधर्म के रूप में खड़ा हो गया है।

In the present age, it has become a prevalent practice to approach those who lead people astray in the name of religion and thus be deceived.

वास्तविक साधु लोगों के मन के अनुरूप कथा बोलकर उनकी वञ्चना नहीं करते, प्रतारक समन्वयवादियों के दोष साधु दिखला देते हैं।

Real saints do not deceive people by telling stories that align with their desires; rather, they expose the faults of deceitful proponents of syncretism.

जिनका भाग्य अच्छा है, वही साधु की कथा सुनकर सावधान होते हैं।

Only those with good fortune become cautious after listening to the teachings of a saintly person (*sādhu*).

विशुद्ध साधु की कथा, भगवद्भक्त की कथा हमारी वर्त्तमान रुचि अथवा धारणा के विरुद्ध होने पर भी वही हमारे लिये मंगलकर है।

The teachings of a pure saintly person (*viśuddha-sādhu*) and the *hari-kathā* spoken by a devotee of Bhagavān are beneficial for us, even if they go against our current interests or beliefs.

विशुद्ध वस्तु के ग्राहक कम होते हैं।

There are few customers for the pure object.

नकली वस्तु के ग्राहक ही अधिक हैं।

The customers for fake items are more numerous.

'दूध गली-गली जाकर बेचना पड़ता है, किन्तु मदिरा बैठकर ही बिक जाती है।'

"Milk has to be sold from door to door, but alcohol sells by itself."

प्रश्न—दुर्बलता और कपटता—इन दोनों के बीच क्या पार्थक्य है?

Question—What is the difference between weakness and deceit?

उत्तर—कपटता एक भिन्न वस्तु है और दुर्बलता स्वतंत्र वस्तु है।

Answer—Duplicity or hypocrisy (*Kapaṭatā*) is a different thing, and weakness (*durbalatā*) is a separate entity.

इसलिए कपटता और दुर्बलता एक वस्तु नहीं हैं।

Therefore, Duplicity or hypocrisy (*Kapaṭatā*) and weakness (*durbalatā*) are not the same thing.

कपटता रहित व्यक्ति का ही मंगल होता है।

Only a person without duplicity or hypocrisy (*kapaṭatā*) attains

auspiciousness.

कपटी का मंगल नहीं होता।

There is no happiness for a duplicitous person.

'सरलता' का दूसरा नाम 'वैष्णवता' है।

Another name for 'simplicity' is 'Vaiṣṇavatā' (one's standing as a Vaiṣṇava—a devotee of Lord Kṛṣṇa).

कपटी व्यक्ति अभक्त होता है।

A duplicitous person is a non-devotee.

सरल व्यक्ति दुर्बल हो सकता है, किन्तु कपटी नहीं।

A simple person may be weak, but not duplicitous.

जो कपटी होता है, उसके मुख पर एक बात होती है और मन में दूसरी।

One who is duplicitous has one thing on his face and another thing in his mind.

A duplicitous person speaks one thing, but thinks something else.

दुर्बल व्यक्ति अपनी असुविधा के लिये लज्जित, दुःखित और मर्माहत होता है, किन्तु कपटी व्यक्ति सदा अपनी बहादुरी को लेकर ही उन्मत्त रहता है।

A weak person feels ashamed, sad and hurt due to his drawbacks, but a duplicitous person is always proud about his bravery.

आचार्य के साथ छल करूँगा, वैद्य (आचार्यरूपी वैद्य) के नेत्रों में धूलि फेकूँगा,

I will cheat the *ācārya*, I will throw dust in the eyes of the *vaidya* (doctor in the form of *ācārya* who treats the disease of material existence),

अपनी असत्-प्रवृत्ति रूपी कालसर्प को कपटता की कोठरी में छुपाकर दूध-केला देकर उसका पोषण करूँगा,

I will hide the serpent of my evil tendencies in the room of deceit and nourish it by feeding it milk and bananas.

लोगों को इसे जानने नहीं दूँगा तथा लोगों के निकट साधु सजकर प्रतिष्ठा (सम्मान) प्राप्त करूँगा—ऐसी बुद्धि दुर्बलता नहीं, अपितु भीषण कपटता है।

I will not let people know about this and will gain respect among people by dressing up as a saint—such wisdom is not a sign of weakness but a grave duplicitousness.

ऐसे व्यक्ति का किसी काल में भी मंगल नहीं होगा।

Such a person will never experience well-being and auspiciousness.

निष्कपट होने की प्रवृत्ति लेकर विनीत भाव से साधु के श्रीमुख विगलित कथा श्रवण

करते-करते क्रमानुसार मंगल होगा।

Only by adopting a disposition of sincerity and listening to the devout and moving discourse of a saint with humility will one gradually achieve true well-being.

यदि हम भक्त का वेश लेकर अन्य कार्यों में व्यस्त हो पड़ें, संसार के कार्यों को ही गुरुत्व प्रदान करके उनमें ही मग्न रहें अथवा त्रिदण्ड लेकर रावण के समान सीता-हरण की दुर्बुद्धि का ही पोषण करें, तो ऐसा होने पर अपने हाथों से स्वयं अपना गला काटना होगा तथा हरिभजन के नाम पर और कुछ करना होगा।

If we adopt the appearance (garb) of a devotee but get involved in other activities, give importance to worldly matters and remain engrossed in them, or, with a *tri-daṇḍa* (a triple staff of a renunciate), nourish a misguided intent like Rāvaṇa who kidnapped Mother Sītā by falsely dressing as a *tri-daṇḍī sannyāsī*, then we will end up cutting our own necks, engaging in all extraneous activities while merely performing a pretense of devotional service to Lord Hari.

यदि लाख-लाख जन्म हममें दुर्बलता रहे, अनर्थ रहें, तो उसमें कोई विशेष क्षति नहीं है।

If we remain weak or full of unwanted habits (*anarthas*) for countless lifetimes, there is no significant harm in it.

किन्तु यदि एकबार भी कपटता का आश्रय करूँ, भक्त के रूप में सजकर भोगों में ही मत्त रहूँ, तो ऐसा होने पर असुविधा ही रहेगी।

However, if I resort to hypocrisy and duplicity (*kapaṭatā*) even once, and while dressing up as a devotee, I remain intoxicated in worldly pleasures and sense gratification, it will only lead to inconvenience.

However, if I ever take refuge in deceit, masquerade as a devotee while remaining intoxicated with worldly pleasures,

पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि लाख-लाख योनियों में रहना अच्छा है किन्तु कपटता का आश्रय करना कदापि अच्छा नहीं है।

It is good to take birth and live in thousands of species like animals, birds and insects but it is never good to resort to duplicity.

प्रश्न—हमारी दुर्गति का कारण क्या है? (Page 57)

Question—What is the reason for our misery? (Page 57)

उत्तर—'मैं कौन हूँ?'—इस विचार की आलोचना नहीं होने पर ही हमारी दुर्गति होती है।

Answer—"Who am I?"—When we do not discuss the answer to this vital question in the association of the saintly personalities, we face reverses and miseries in this material world.

संसार के नाना प्रकार के प्रलोभन हमें आकर्षित करते रहते हैं।

The various kinds of temptations in the material world continually attract us.

जिस मुहूर्त्त हम थोड़ा-सा भी असतर्क होते हैं, उसी मुहूर्त्त माया-राक्षसी हमारे गले को पकड़कर हमें निगल लेती है।

At the very moment we become even slightly inattentive, the demonic force of illusion seizes us and swallows us whole.

प्रतिदिन भगवत्-कथा श्रवण करने के अतिरिक्त इस माया के कवल से उद्धार पाने का और कोई उपाय नहीं है।

Apart from listening to divine pastimes of Bhagavān daily, there is no

other way to be freed from the clutches of *māyā* — this illusory potency of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa.

प्रश्न—श्रीमन्महाप्रभु के मतानुसार मानव जीवन का सर्वप्रधान कर्त्तव्य क्या है? (Page 57)

Question: According to Śrīman Mahāprabhu, what is the most important duty of human life? (Page 57)

उत्तर—प्रथमतः हमें जानना होगा कि—'हम कौन हैं?' उसके बाद—'हमारा कर्त्तव्य क्या है?'—यह हम सहज रूप में ही जान जायेंगे।

Answer—First, we need to understand, "Who am I?" Once we comprehend this, we will naturally come to know, "What is our duty?"

श्रीगौरांगदेव ने हमें यह शिक्षा प्रदान की है—हम कार्ष्ण (कृष्ण की) वस्तु हैं, हम वैष्णव अर्थात् कृष्ण-सम्बन्धीय हैं (वस्तुत: कृष्ण अथवा विष्णु में कोई भेद नहीं है) किन्तु हम कृष्ण अथवा विष्णु नहीं हैं क्योंकि हम अणु चेतन वस्तु हैं।

Lord Gaurāṅga has taught us that we are *kārṣna* (possessions of Lord Kṛṣṇa); we are *Vaiṣṇavas*, which means we are related to Lord Kṛṣṇa (essentially, there is no difference between Lord Kṛṣṇa and Lord Viṣṇu). However, we are neither Lord Kṛṣṇa nor Lord Viṣṇu because we are infinitesimal conscious entities (or minute sentient or living entities).

भगवान विभु (बृहत्) चेतन वस्तु हैं। जीव कभी भी ईश्वर-पदवाच्य नहीं हो सकता।

Bhagavān is the infinite, all-pervading and boundless (*vibhu*) conscious entity. The minute living entity (*jīva*) can never attain the status of the Supreme Lord and Controller (*īśvara*).

कार्ष्णस्वरूप में कृष्णसेवा के अतिरिक्त हमारा अन्य कोई कृत्य नहीं है।

As a living entity belonging to Lord Kṛṣṇa (*kārṣṇa-svarūpa*), we have no other duty except to serve Lord Kṛṣṇa .

जब हम कृष्णसेवा से विमुख होते हैं, तभी हम स्वरूप विस्मृत होकर माया के कवल में कवलित होते हैं।

When we turn away from the service of Lord Kṛṣṇa or become averse to Lord Kṛṣṇa's service, then we forget our true eternal nature (*svarūpa*) and are devoured by the jaws of fearsome *māyā* (illusory potency of Lord Kṛṣṇa).

साधु-गुरु की कृपा से जब हमारा सम्बन्ध ज्ञान उदित होता है, तब हम समझ पाते हैं कि हम कृष्ण के नित्यदास हैं एवं 'ईशावस्यमिदं सर्वं' अर्थात् समस्त जागतिक वस्तुएँ

भगवान की सेवा के उपकरण हैं।

When, by the grace of the saintly personalities (*sādhus*) and the spiritual master (Guru), our knowledge of relationship is awakened, we realize that we are eternal servants of Lord Kṛṣṇa and that "*īśāvāsyam idam sarvaṁ*" means that all worldly objects are instruments and paraphernalia for serving Bhagavān.

'केह माने, केह न माने, सबे कृष्णदास'—हम श्रीकृष्ण के सेवक हैं। श्रीकृष्ण जीव के नित्य प्रभु हैं।

"***Keha māne, keha na māne, sabe kṛṣṇa-dāsa***"—whether one accepts it or not, we are all servants of Lord Śrī Kṛṣṇa. Lord Śrī Kṛṣṇa is the eternal master of every living entity.

कृष्ण सेवा ही जीव का नित्यकृत्य, सर्वप्रधान अथवा एकमात्र कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त हमारा और कोई कृत्य नहीं है।

Service to Lord Kṛṣṇa is the eternal duty, the supreme duty, and the sole duty of the living entity. Apart from this, we have no other duty.

किन्तु जब हम परमेश्वर की सेवा से विमुख होते हैं, तभी हम 'अहंकार विमूढात्मा' (अहंकार से विमूढ़ व्यक्ति) होकर स्वयं को प्रकृति का भोक्ता अथवा कर्त्ता समझकर अभिमान करते हैं किन्तु यह अभिमान प्राकृत है।

However, when we turn away from the service of the Supreme Lord, we become '*ahaṅkāra vimūḍhātmā'* (a person bewildered by false ego) and, mistakenly considering ourselves as the enjoyer or doer of the material nature, develop false ego. This false ego is mundane and misguided.

जब हमारी चेतनवृत्ति बाहरी जगत के विषय का भोग करने में प्रमत्त रहती है, तब इस वृत्ति को 'मन' कहते हैं।

When the function of our consciousness is absorbed in the enjoyment of the sense objects of the external material world, this tendency (function) is referred to as the 'mind'.

यह 'मन' आत्मस्वरूप की 'विरूप-अवस्था' (विपरीत अवस्था) है अर्थात् जड़ का भोक्ता है।

This 'mind' represents the 'distorted condition' of the *ātma-svarūpa* (true nature of the self), meaning it perceives itself as the enjoyer of the dull material world.

यह 'मन' आत्मा की सुप्त (निद्रा) अवस्था में जागृत रहकर peon-स्वरूप में कर्त्तृत्व

अभिमान से विषय भोग करता है।

The 'mind' remains active during the soul's sleeping state, engaging in the enjoyment of sense objects as a peon, with the false ego of being the doer.

यह 'मन' ही आत्मा को वञ्चित करके सुख-दुःख भोग करता है।

This 'mind' deceives the soul and experiences pleasure and pain.

पाप-पुण्य के वशीभूत होकर कभी स्वर्ग, कभी नरक भोग करता है।

Under the influence of sins (*pāpa*) and pious merit (*puṇya*), it experiences either heaven or hell.

अत: यह मन ही आत्मा का सर्वप्रधान शत्रु है।

Therefore, this mind is the chief enemy of the soul.

इस मन का निग्रह करना ही समस्त शास्त्रों का अभिप्राय है।

Controlling this mind is the essence of all scriptures.

हम सभी को 'मुक्त' होना होगा।

We all need to become 'liberated'.

मुक्त अवस्था और कुछ नहीं है, स्वरूप में अवस्थित होकर सर्वेन्द्रियों से अनुकूल रूप से कृष्ण का अनुशीलन (प्रीतिविधान) ही 'मुक्त' अवस्था है।

The state of 'liberation' is simply being situated in one's original, eternal, constitutional, and spiritual nature (*svarūpa*) while engaging in the loving service of Lord Kṛṣṇa with all the senses in a harmonious way.

भाग्यक्रम से जब आत्मा जागृत होती है, तब—'परमात्मा रूपी कृष्ण की नित्यसेवा ही मेरे स्वरूप का नित्यधर्म है'—यह विचार समझ में आता है।

When the soul awakens from its sleeping condition due to its great good fortune, it understands that the eternal constitutional duty (*nitya-dharma*) of its original spiritual nature (*svarūpa*) is to serve Lord Kṛṣṇa, who is the Supreme Soul (*paramātmā*).

भगवद्भजन और भगवद्कृपा ही नित्यमंगल का उपाय है। मनुष्य शरीर ही भजन का मूल है। मनुष्य के अतिरिक्त और किसी देह में हरिभजन नहीं होता।

Devotional service to God and the grace of God are the only means to eternal welfare. Only the human body is suited for devotional service; one cannot engage in the devotional service of Bhagavān Hari in any other body other than human body.

श्रीगौरांगदेव संकीर्त्तन-प्रवर्त्तक, कलियुग-पावनावतारी और महावदान्य हैं।

śrīgaurāṃgadeva saṃkīrttana-pravarttaka, kaliyuga-pāvanāvatārī aura mahāvadānya haiṃ.

Śrī Gaurānga-deva is the initiator (inaugarator) of the *saṅkīrtana* movement, the source of all incarnations (*avatārī*) who has descended from Śveta-dvīpa in the spiritual sky in order to deliver the fallen conditioned souls of the age of darkness and hypocrisy called Kali-yuga, and the most compassionate manifestation of Lord Kṛṣṇa as He freely distributes the love of Godhead to one and all without any discrimination and expectation.

उन्होंने 'तृणादपि सुनीच' श्लोक के चार वाक्यों में सर्वत्र कृष्ण कीर्त्तन ही जीवों का एकमात्र कृत्य है, यह शिक्षा प्रदान की है।

He has imparted the teaching that loud glorification of the name, form, qualities and pastimes of Lord Kṛṣṇa (*kṛṣṇa-kīrtana*) is the sole duty of living entities, as encapsulated in the four lines of the verse '*tṛṇād api sunīcena*'.

जो संसार से निष्कृति प्राप्तकर परमानन्द प्राप्त करने के इच्छुक है, नित्यानन्द रूपी धन में धनी होने के अभिलाषी हैं, वे निरन्तर श्रीनामसंकीर्त्तन करेंगे।

Those who seek liberation from the material world and wish to attain supreme bliss, desiring to be rich in the treasure of eternal joy, will constantly engage in *śrī-nāma-saṅkīrtana* (the loud congregational chanting of the holy names of Lord Kṛṣṇa).

यह हरिनाम हरि से अभिन्न हैं।

The holy name of Lord Hari (*hari-nāma*) is non-different from Lord Hari Himself.

शब्दब्रह्म कृष्णनाम संसार से हमारा उद्धार कर हमें कृष्णज्ञान और कृष्णप्रेम प्रदान कर सकते हैं।

The *śabda-brahma* (transcendental sound vibration) in the form of Lord Kṛṣṇa's holy name (*kṛṣṇa-nāma*) can deliver us from the material world and bestow upon us knowledge and love for Lord Kṛṣṇa.

'तृणादपि सुनीच' अर्थात् तृण से भी सुनीच होकर कृष्ण नाम करना होगा।

Being *tṛṇād-api sunīca*, more humble than a blade of grass and more tolerant than a tree, we will have to chant *kṛṣṇa-nāma* (the holy name of Lord Kṛṣṇa.)

'तृणादपि सुनीच' भाव ही 'अहं ब्रह्मास्मि' ज्ञान को मूल से नष्ट करने वाला है।

The mood of *tṛṇād-api sunīca* (the mood of being more humble than a

blade of grass and more tolerant than a tree) will destroy from root the the suicidal and self-destructive teaching '*aham brahmāsmi*' (I am '*brahma*'.)

कीर्त्तनकारी भक्तजन स्वयं को श्रीनाम के सेवक के रूप में जानते हैं।

The devotees who perform *kīrtana* (loud glorification of the holy names of Lord Kṛṣṇa) regard themselves as the servants of śrī-nāma (the holy names of Lord Kṛṣṇa).

वे जगत के प्रत्येक जीव को कृष्णभोग्य (श्रीकृष्ण के भोग्य) एवं प्रत्येक वस्तु को कृष्णसेवा का उपकरण ही मानते हैं।

They consider every living entity in the world as meant for Lord Śrī Kṛṣṇa's enjoyment and every object as an instrument or paraphernalia for Lord Śrī Kṛṣṇa's service.

श्रीकृष्ण का नाम, स्वरूप और विग्रह श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं।

The holy name (*nāma*), transcendental form (*svarūpa*), and the worshipable Deity of Lord Śrī Kṛṣṇa are inseparable from Lord Śrī Kṛṣṇa Himself.

श्रीनाम साक्षात् सच्चिदानन्द-विग्रह हैं।

The holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa is indeed the direct embodiment of eternity (*sat*), knowledge (*cit*) and bliss (*ānanda*).

श्रीकृष्णनाम श्रीनन्द के नन्दन, श्रीयशोदा के दुलाल हैं।

The holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa is the beloved son of Śrī Nanda Mahārāja and beloved offspring of Mother Śrī Yaśodā.

श्रीनाम बात कर सकते हैं।

The holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa can speak.

श्रीकृष्णनाम अन्तर्यामी, सर्वज्ञ हैं।

The holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa is indwelling Supersoul (*antaryāmī*) and omniscient (*sarvajña*).

नामरूपी कृष्ण सरल हृदय, चिन्मय नयन, सेवोन्मुख जिह्वा, श्रवणोन्मुख कान, कृष्ण की इन्द्रियों को प्रीति प्रदान करने में उन्मुख इन्द्रियों में स्फुरित होते हैं।

Lord Kṛṣṇa, in the form of His holy name, manifests in the simple and non-duplicitous heart, in eyes full of spiritual vision, on the tongue eager for devotional service, and in ears inclined to hear the sweet pastimes of Lord Kṛṣṇa, as well as in other senses of the spiritual practitioner (*sādhaka*) that are dedicated to giving happiness to the senses of Lord Kṛṣṇa.

श्रीकृष्णनामसंकीर्त्तन से सर्वाभीष्ट प्राप्त होता है।

All of one's desires can be fulfilled by the loud congregational chanting of the holy names of Lord Śrī Kṛṣṇa (*śrī-kṛṣṇa-nāma-saṅkīrtana*).

श्रीकृष्णसंकीर्त्तन के आभास से समस्त पाप क्षय और संसार बन्धन शिथिल होता है।

The loud congregational chanting of the holy names of Lord Śrī Kṛṣṇa (*śrī-kṛṣṇa-nāma-saṅkīrtana*) leads to the destruction of all sins and slackens the bondage of worldly existence.

तब नामाभास से मुक्त होकर जीव (शुद्ध) श्रीनामसंकीर्त्तन का अधिकारी होता है।

Then the living entity becomes free from the semblance of the holy name (*nāma-ābhāsa*) and becomes eligible for the pure loud congregational chanting of the holy names of Lord Śrī Kṛṣṇa (*śuddha śrī-kṛṣṇa-nāma-saṅkīrtana*)

श्रीकृष्णनाम अखिलरसामृत-सिन्धु हैं।

Śrī-kṛṣṇa-nāma (The holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa) is *akhila-rasāmṛta-sindhu* (the ocean of all nectarean transcendental mellows.).

भगवद्भक्तगण श्रीनामसंकीर्त्तन करते हुए श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं।

The devotees of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa serve Him by engaging in loud congregational chanting of His holy names (*śrī-nāma-sankīrtana*).

श्रीनामसंकीर्त्तन से हमारे समस्त अमंगल विदूरित होते हैं एवं चित्त निर्मल होने पर श्रीनाम उदित होते हैं।

Loud congregational chanting of His holy names (*śrī-nāma-sankīrtana*) removes all our misfortunes and when the heart becomes purified the holy name of Śrī Kṛṣṇa (*śrī-nāma*) manifests.

श्रीकृष्णनाम पुरुषोत्तम वस्तु हैं।

puruṣottama vastu haiṃ.

The holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa (*śrī-kṛṣṇa-nāma*) is *puruṣottama-vastu* (the Supreme Person).

श्रीनाम लीला पुरुषोत्तम हैं।

The holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa (*śrī-nāma*) is *līlā-puruṣottama* (the Supreme Personality of Godhead who performs the sweet pastimes such as *rāsa* dance with the *gopīs*).

श्रीकृष्णनाम परमपुरुष, परमेश्वर वस्तु हैं।

paramapuruṣa, parameśvara vastu haiṃ.

The holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa (*śrī-kṛṣṇa-nāma*) is the supreme person (*parama-puruṣa*) and the Supreme Lord and Master (*parameśvara).*

श्रीनाम स्वेच्छामय स्वतंत्र हैं।

The holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa is endowed with free will (*svecchā-maya*) and independent.

श्रीनाम जगदीश्वर, विश्व के नियामक, पालक और रक्षक हैं।

The holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa is the the master of the universe (*jagadīśvara*). Moreover it is the *niyāmaka* (controller), *pālaka* (maintainer) and protector (*rakṣaka*) of the universe.

जितनी भी बाधा-विघ्न क्यों नहीं रहे, श्रीनाम अशेष बाधा-विघ्न हरण करते हैं।

No matter how many obstacles and difficulties there are, the holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa (*śrī-nāma*) removes all obstacles and difficulties.

हृदय में जितने भी कु-संस्कार क्यों नहीं रहें, श्रीकृष्णनाम उच्चारण से हृदय निर्मल होता है, समस्त भूल-भ्रान्ति विदूरित होती हैं।

No matter how many bad impressions (*saṁskāras*) reside in the heart, by

chanting the holy name of Lord Śrī Kṛṣṇa, the heart becomes pure, and all misconceptions are dispelled.

अवश्य ही नामोच्चारण काल में प्रथम अवस्था में हृदय में जन्म-जन्मान्तर की अनर्थ राशि होने के कारण संभव है शुद्धनाम उच्चारित नहीं हों किन्तु अविश्रान्त नामोच्चारण के प्रभाव से वे समस्त अनर्थ क्रमशः दूरीभूत हो जाते हैं।

Certainly, during the initial stage of chanting the holy name, it is possible that pure names (*śuddha-nāma*) are not uttered due to the accumulation of unwanted habits and thoughts (*anarthas*) from countless past lives. However, due to the continuous chanting of the holy name, all these unwanted habits and thoughts (*anarthas*) are gradually dispelled.

कृष्णनाम में ही सर्वशक्तियाँ, सर्वसुविधा, समस्त आनन्द है। कृष्णनाम अखण्ड पूर्णानन्द और पूर्णज्ञानमय हैं।

In the holy name of Lord Kṛṣṇa, there are all powers, all conveniences, and all joy. The holy name of Lord Kṛṣṇa is the embodiment of uninterrupted, complete bliss and complete knowledge.

निर्गुण हृदय में निर्गुण कृष्णनाम उदित होते हैं।

The transcendental holy name of Lord Kṛṣṇa, which is beyond the influence of the mundane modes of material nature, arises in a transcendental heart, which is beyond the influence of the mundane modes of material nature.

सगुण हृदय में कृष्णनाम उदित नहीं होते।

The transcendental holy name of Lord Kṛṣṇa does not arise in a heart which is influenced by the mundane modes of material nature.

कृष्ण ही हमारी एकमात्र उपास्य वस्तु हैं।

Lord Kṛṣṇa alone is the object of our worship.

प्रेमपूर्ण हृदय में उन प्रेम के ठाकुर की उपासना होती है।

Worship of the Lord of love takes place in a heart full of love.

ऐश्वर्य शिथिल प्रेम के द्वारा प्रेममय कृष्ण की सेवा नहीं होती।

One cannot render service to the loving Lord Kṛṣṇa by love that is weakened by awe and reverence.

अखिलरसामृतमूर्त्ति कृष्णनाम के साथ रामनाम की तुलना नही हो सकती।

akhilarasāmṛtamūrtti kṛṣṇanāma ke sātha rāmanāma kī tulanā nahī ho sakatī.

The holy name of Lord Kṛṣṇa, which is the embodiment of all nectarean

mellows (*akhila-rasāmṛta-mūrti)*, cannot be compared with the holy name of Lord Rāma.

कृष्णनाम में जो रसामृतसिन्धु उद्वेलित होता है, रामनाम में उसके कोटि अंश का एकांश भी उदित नहीं होता क्योंकि कृष्णनाम पूर्णतम एवं रामनाम पूर्ण हैं।

The ocean of nectarean mellows (*rasāmṛta-sindhu*) that surges within the holy name of Lord Kṛṣṇa is not even fractionally present in the holy name of Lord Rāma. because the holy name of Lord Kṛṣṇa is the most complete (*pūrṇatama*) , while the holy name of Lord Rāma is complete (*pūrṇa*).

कृष्णनाम पूर्णतम, अवतारी, अंशी हैं और रामनाम पूर्ण, अंश और अवतार हैं।

The holy name of Lord Kṛṣṇa is the most complete (*pūrṇatama*), the source of all incarnations (*avatārī*), and *aṁśī* (the whole), while the holy name of Lord Rāma is complete (*pūrṇa*), a part (*aṁśa*), and an incarnation (*avatāra*).

कृष्णनाम समस्त सत्ता, समस्त ज्ञान और समस्त आनन्द के आकर हैं।

The holy name of Lord Kṛṣṇa is the source of all existence (*sattā*), all knowledge (*jñāna*), and all bliss (*ānanda*).

वे सर्वकारणकारण हैं।

He is the cause of all causes.

निष्कपट, निर्गुण सेवकों की प्रेमसेवा कृष्णनाम ग्रहण करते हैं।

The holy name of Lord Kṛṣṇa only accepts the service of those servants who are devoid of duplicity (*niṣkapaṭa*) and transcendental (*nirguṇa*).

श्रीकृष्ण अवतारी है, रामचन्द्र अवतार हैं।

śrīkṛṣṇa avatārī hai, rāmacandra avatāra haiṃ.

Lord Śrī Kṛṣṇa is the source of incarnations (*avatārī*) and Lord Śrī Rāmacandra is an incarnation (*avatāra*).

श्रीकृष्ण लीला-पुरुषोत्तम हैं।

Lord Śrī Kṛṣṇa is *līlā-puruṣottama* (the Supreme Personality of Godhead who performs sweet pastimes such as *rāsa* dance).

श्रीकृष्ण में लीलामाधुरी, वेणुमाधुरी, रूपमाधुरी और प्रेममाधुरी पूर्ण मात्रा में हैं,

Lord Śrī Kṛṣṇa possesses the unparalleled sweetness of His form (*rūpa-mādhurī*), qualities (*guṇa-mādhurī*), flute-song (*veṇu-mādhurī*) and pastimes (*līlā-mādhurī*) to the complete degree.

श्रीरामचन्द्र में यह समस्त गुण परिलक्षित नहीं होने पर भी वे साठ गुण सम्पन्न नारायण, विष्णु और सभी देवताओं के ईश्वर, मायाधीश पूर्णब्रह्म और सनातन हैं।

Although all these qualities are not seen in Lord Śrī Rāmacandra, He is nonetheless endowed with sixty qualities. He is the Lord of even Nārāyaṇa, Viṣṇu, and all the demigods, the Lord over *māyā* (*māyādhīśa*), the Supreme Absolute Truth (*pūrṇa-brahma*), and eternal (*sanātana*).

श्रीकृष्ण चौंसठ गुण सम्पन्न स्वयं भगवान हैं, वे नन्दनन्दन हैं।

Lord Śrī Kṛṣṇa is the original Supreme Lord (Svayaṁ-Bhagavān) endowed with sixty four qualities; He is Nanda-nandana (the son of Śrī Nanda Mahārāja).

प्रश्न—क्या गुरु-अवज्ञा महा-अपराध है? (Page 61)

Question—Is disobeying the Guru a great offence? (Page 61)

उत्तर—निश्चय ही।

Answer—Of course.

गुरु-अवज्ञा तृतीय नामापराध है।

Disobeying the spiritual master is the third offence against the holy name.

गुरु के प्रति मनुष्यबुद्धि, प्राकृतबुद्धि, लघुबुद्धि ही गुरु-अवज्ञा है।

One disobeys the spiritual master if (1) one regards the spiritual master as an ordinary human being (*manuṣya-buddhi*), (2) one thinks that the spiritual master's body is material (*prākṛta-buddhi*), and (3) one considers the spiritual master as light-weight and insignificant (*laghu-buddhi*).

गुरु के आदेश का उल्लंघन करना एवं गुरुसेवा नहीं करना भी गुरु-अवज्ञा अथवा गुरु के चरणों में अपराध अर्थात् नामापराध है।

guru ke ādeśa kā ullaṃghana karanā evaṃ gurusevā nahīṃ karanā bhī guru-avajñā athavā guru ke caraṇoṃ meṃ aparādha arthāt nāmāparādha hai.

Violating the orders of the spiritual master and not serving the spiritual master are also acts of disobedience to the spiritual master (*guru-avajñā*). These actions constitute an offense at the lotus feet of the spiritual master and an offense against the holy name of Lord Kṛṣṇa (*nāmāparādha*).

गुरु के प्रति अपराध होने पर कदापि नाम नहीं होगा—मंगल नहीं होगा।

If one commits an offence towards the spiritual master, one will neither be able to chant the holy name of Lord Kṛṣṇa properly not meet any auspiciousness in this life.

श्रीगुरुदेव की कृपा के बिना मानव अपने जन्म, ऐश्वर्य, श्रुत (विद्या) एवं श्री (रूप) के प्रभाव से अहंकार-विमूढात्मा होकर भगवान के चरणकमलों की सेवा प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है।

Without the mercy of Śrī Gurudeva, a human being becomes *ahaṅkāra-vimūḍha-ātmā* (a person bewildered by false ego) due to the influence of aristocratic birth (*janma*), wealth (*aiśvarya*), learning (*śruta* or *vidyā*), and beauty (*śrī* or *rūpa*). As a result, he becomes incapable of attaining the service of the lotus feet of Bhagavān.

श्रीगुरुदेव स्वयंरूप भगवान के साक्षात् प्रकाशविग्रह हैं।

Śrī Gurudeva directly an expansion (*prakāśa-vigraha*) of the Supreme Lord in His original personal form *(svayaṁ-rūpa* Bhagavān).

वे आश्रयजातीय सेवक-भगवान हैं एवं विषयजातीय सेव्य-भगवान से स्वतंत्र नहीं हैं।

He is *āśraya-jātīya sevaka-bhagavān* (the foremost servant of Lord Kṛṣṇa and the receptacle of love for Śrī Kṛṣṇa) and is not different from *viṣaya-jātīya sevya-bhagavān* (the Supreme Personality of Godhead, who is the object of service and the object of the devotee's love and affection).

श्रीगुरुपादपद्म लीलापुरुषोत्तम नन्दनन्दन से अचिन्त्यभेदाभेद तत्त्व-विशिष्ट हैं।

From the perspective of *acintya-bhedābheda tattva* (the principle of inconceivable simultaneous oneness and difference), *Śrī Guru-pāda-padma* is both different and non-different from *līlā-puruṣottama* Nanda-nandana (the son of Śrī Nanda Mahārāja who performs sweet pastimes such as the rāsa dance with the *gopīs*).

जिस प्रकार सूर्य के आलोक की सहायता से ही सूर्य का दर्शन सम्भव हो सकता है, कृत्रिम आलोक में सूर्य का दर्शन सम्भवपर नहीं हो सकता, उसी प्रकार गुरुकृपा के बल से विषयवासनारूपी अग्नि के सम्पूर्ण रूप में बुझने पर श्रीकृष्ण का साक्षात्कार प्राप्त होता है।

Just as the sun can only be seen with the help of its own light and not with artificial illumination, similarly one receives the direct experience and realization of Lord Śrī Kṛṣṇa only when the fire of material desires and hankering for sense objects is extinguished in its entirety by the grace of the spiritual master.

हम अधोक्षज (इन्द्रिय से अतीत) वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने की जितनी भी चेष्टा क्यों नहीं करें, श्रीगुरुपादपद्म की कृपाकण के बिना हमारी वे समस्त चेष्टाएँ ही भूसा-कूटने के समान केवल पशु-श्रम मात्र है।

No matter how much effort we put into acquiring knowledge of the transcendental (beyond the senses), without the grace of the lotus feet of the Guru, all those efforts are akin to mere animal labor, as futile as grinding husk.

शास्त्रज्ञान में अधिकार गुरुकृपा के आलोक पर निर्भर करता है।

Knowledge of the scriptures depends on the illumination of the Guru's grace.

अक्षज (इन्द्रियों से उत्पन्न) ज्ञान से शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा भस्म में घी-की आहुति देने के समान विफल है।

The attempt to gain scriptural knowledge through sensory (material) knowledge is as futile as offering ghee into ashes.

Trying to acquire knowledge of scriptures through the knowledge generated by senses is as futile as offering ghee in ashes.

शास्त्रवाक्यों और गुरुवाक्यों के प्रति हमारे द्वारा अनास्था प्रदर्शित करना उचित नहीं है, इससे अपराध होता है।

It is inappropriate to show disregard for the scriptural and guru's words, as it results in committing an offense.

भगवद्-ज्ञान प्राप्त करने के लिये शास्त्रवाक्यों और गुरुवाक्यों के प्रति श्रद्धायुक्त होना एकान्त आवश्यक है। शास्त्रवाक्यों के प्रति अनादर ही चतुर्थ नामापराध है।

To attain divine knowledge, it is essential to have faith in the scriptural and guru's words. Disrespect towards the scriptural words is considered the fourth name offense.

प्रश्न—कृष्ण की उपासना कोन कर सकते हैं? (Page 62)

Question—Who can worship Lord Kṛṣṇa? (Page 62)

उत्तर—'मैं कृष्ण का हूँ, कृष्ण मेरे हैं'—इस प्रकार एकनिष्ठ नहीं होने पर कृष्ण की उपासना नहीं होती।

Answer—'I belong to Lord Kṛṣṇa and Lord Kṛṣṇa belongs to me'— unless one possesses single-minded devotion in this manner, one cannot worship Lord Kṛṣṇa.

'मैं कृष्ण का हूँ, मेरी प्रत्येक वस्तु कृष्ण की है'—जिनमें ऐसी अकिञ्चना-भक्ति है, उनके द्वारा ही कृष्ण की उपासना सम्भव है।

"I belong to Lord Kṛṣṇa, and everything of mine belongs to Lord Kṛṣṇa." Only those who possess such selfless (akiñcanā) devotion, considering Lord Kṛṣṇa to be their only possession, can truly worship Him.

मेरे स्वार्थ का विषय एकमात्र कृष्ण हैं एवं मैं कृष्ण का हूँ, इसके अतिरिक्त कृष्ण से पृथक अन्य स्वार्थ के प्रति में कोई सहानुभूति नहीं है—यही भक्त का विचार होता है1

"The only object of my self-interest is Lord Kṛṣṇa, and I belong to Lord Kṛṣṇa. Apart from this, I have no sympathy for any other self-interest." This is the thought of the devotee.

जो कृष्ण को सर्वस्व देते हैं, वे ही कृष्ण का सर्वस्व प्राप्त कर पाते हैं।

Only those who give everything to Lord Kṛṣṇa, can receive everything from Lord Kṛṣṇa.

Those who dedicate everything to Lord Kṛṣṇa, they alone can receive everything from Lord Kṛṣṇa.

जो कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को कुछ देना चाहते है, वे कृष्ण को प्राप्त नहीं कर सकते।

Those who want to give something to anyone other than Lord Kṛṣṇa cannot attain Lord Kṛṣṇa.

कृष्ण क्या वस्तु हैं, कृष्णप्रीति किसको कहते हैं, वे इसे समझ नहीं पाते, इसीलिये वे कृष्णसेवा के अतिरिक्त नाना कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं।

They are unable to understand what Lord Kṛṣṇa is and what is called love for Lord Kṛṣṇa. That is why they become busy in various activities other than serving Lord Kṛṣṇa.

तभी देशसेवा, मनुष्यसेवा, आत्मीय-स्वजनों की सेवादि भिन्न-भिन्न सेवाओं का विचार

उपस्थित होता है।

Only then does the idea of various services, such as service to the nation, service to humanity, and service to near and dear ones, arise.

तब हम गुरुपादपद्म की सेवा से वञ्चित हो जाते हैं।

Then we are deprived of the service of *Śrī Guru-pāda-padma* (the lotus feet of the spiritual master).

गुरु-कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त हमारा और कोई स्वार्थ नहीं है—इस विचार के द्वारा यथार्थ स्वार्थपर होना ही वास्तविक बुद्धिमान् का कार्य है।

We have no other selfish interest except the service of Guru (the spiritual master) and Lord Kṛṣṇa. To be genuinely selfish with this thought in mind is the mark of a truly intelligent person.

प्रश्न—क्या भक्त विद्वेषी के प्रति क्रोध करना भक्ति है? (Page 62)

Question—Is it an act of devotion to show anger towards a person who harbors envy towards a devotee of Lord Kṛṣṇa? (Page 62)

उत्तर—भक्त-विद्वेषी के प्रति क्रोध करना ही होगा, यह भजन का विशेष अंग है, ऐसा नहीं करना ही अन्याय है।

Answer—One must get angry at a person who maintains envy towards the devotees of Lord Kṛṣṇa, this is a special part of worship, not doing so is injustice.

किन्तु भक्तविद्वेषी कौन हैं?—यह विचार करना आवश्यक है।

However, it is essential to consider who is envious of the devotees.

जो परम आनन्दमय सर्वान्तर्यामी जगद्‌बन्धु श्रीभगवान की सेवा नहीं करते, वे अपना मंगल तो करते ही नहीं हैं, अपितु कृष्ण-कार्ष्ण (कृष्ण भक्त) के प्रति विद्वेष के द्वारा अपना अमंगल ही आवाहन करते हैं।

Those who do not render service to Śrī Bhagavān, the most blissful and omnipresent friend of the world who dwells in the hearts of all living entities, not only fail to do good for themselves but also invite misfortune by harboring hatred and envy towards Lord Kṛṣṇa and His devotees (*kārṣṇas*).

ऐसे कृष्णद्वेषी अथवा कार्ष्णद्वेषियों के प्रति दया नहीं दिखानी चाहिये।

One should not show compassion towards such individuals who harbor hatred towards Lord Kṛṣṇa or His devotees (*kārṣṇas*).

अकृष्ण की उपासना में मत्त ऐसे व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा अथवा क्रोध प्रदर्शन करना ही होगा।

One must show disregard or anger towards those who are engrossed in the worship of objects or personalities other than Lord Kṛṣṇa.

किन्तु मैं स्वयं भक्त-विद्वेषी हूँ अथवा नहीं, पहले यह विचार करना होगा।

However, one must first consider whether or not one oneself harbors enmity and envy towards devotees.

मैं कृष्णसेवा कर रहा हूँ अथवा कृष्णसेवा के छल से कुछ और कर रहा हूँ, कृष्ण के प्रति मेरा कितना अनुराग है, मैं कृष्ण के भोग की वस्तु को कृष्ण के साथ छल करके स्वयं ही भोग तो नहीं करना चाहता, यह परीक्षा (आत्म-निरीक्षण) करने की आवश्यकता है।

Am I serving Lord Kṛṣṇa, or am I doing something else under the pretense of serving Him? How much love do I have for Lord Kṛṣṇa? Am I deceiving Lord Kṛṣṇa and enjoying the things meant for His enjoyment myself?

This needs to be examined through self-introspection.

मैं देख रहा हूँ कि मैं और मेरी भोगलोलुप देह कृष्ण-कार्ष्ण के प्रति प्रबल विद्वेषी हैं।

I see that both I and my body, which is deeply attached to sense gratification, are strongly hostile and envious towards Lord Kṛṣṇa and His devotees (kārṣṇas).

सर्वक्षण श्रीकृष्ण के चरणकमलों का चिन्तन और उनके सुखकी चिन्ता नहीं करके मैं अपने सुख, परनिन्दा, परचर्चा और दूसरों के दोषों को ढूँढ़ने में व्यस्त हूँ।

Instead of constantly meditating on the lotus feet of Lord Śrī Kṛṣṇa and being concerned with His happiness, I am preoccupied with my own pleasure, backbiting, gossiping, and criticizing others.

मैं स्वयं अपनी ओर एकबार भी दृष्टिपात नहीं करता।

I don't even take a moment to reflect on myself.

मैं स्वयं ही इतना बड़ा भक्तविद्वेषी हूँ, अतः पहले अपने ऊपर क्रोध प्रकाश करना होगा, स्वयं को पवित्र करना होगा।

I myself am such a great hater of devotees, hence first I will have to vent my anger on myself, I will have to purify myself.

जिससे स्वयं आदर्श-चरित्र होकर मंगल प्राप्त कर सकूँ, निष्कपट रूप से सब समय हरि-गुरु-वैष्णव सेवा कर सकूँ इसके लिये सचेष्ट होना होगा, तभी मंगल होगा।

So that I can develop ideal character and attain auspiciousness and render service to Lord Hari, the spiritual master and the devotees of Lord Kṛṣṇa (*Vaiṣṇavas*). I must remain vigilant for this purpose; only then will I attain auspiciousness,

सभी हरिभजन कर रहे हैं, मेरा हरिभजन नहीं हुआ, इसी मुहूर्त्त में मृत्यु हो सकती है, अतः सर्वक्षण इन समस्त विचारों के प्रति मनोयोग करना होगा।

Everyone is engaged in *hari-bhajana* (devotional service of Lord Hari), but I have not. I could die at any moment, so I must constantly focus on these thoughts.

पहले अपने मंगल के लिये अपनी दृष्प्रवृत्तियों के प्रति, कृष्ण भजन की प्रतिबन्धक लाभ-पूजा-प्रतिष्ठा, कुटिनाटि आदि के प्रति क्रोध प्रकाश करके उनका दमन करना होगा।

To attain auspiciousness for oneself, one must show anger towards the following tendencies and suppress them:

1. Evil and unwholesome tendencies and mean mentality.

2. *Lābha* (the tendency to gain profit through material calculations), *pūjā*

(the tendency to achieve adoration by satisfying mundane people), and *pratiṣṭhā* (the tendency to become important by material standards).

3. *Kuṭināṭi* (the tendency to engage in diplomacy and duplicity).

पहले स्वयं अपनी ओर देखने की आवश्यकता है।

It is necessary to first look at oneself.

ऐसा नहीं होने पर अमंगल उपस्थित हो जायेगा।

One will encounter inauspiciousness if this does not happen.

तत्पश्चात् मेरे अतिरिक्त जो मेरे देहसम्बन्धीय आत्मीयजन हैं, जो गुरुविद्वेष अथवा कृष्ण-कार्ष्ण के प्रति विद्वेष कर रहे हैं एवं भोक्ता के रूप में सजकर मुझे माया की ओर आकर्षित कर रहे हैं, उनके प्रति क्रोध प्रकाशित करना होगा, तभी हमारा मंगल होगा, अन्यथा नहीं।

After that, I must express my anger towards (1) close bodily relatives, (2) those who envy my spiritual master or who envy Lord Kṛṣṇa and His devotees (*kārṣṇas*), and (3) those who attract me towards *māyā* by disguising themselves as enjoyers. Only then will we attain auspiciousness; otherwise, we will not.

प्रश्न—'हरे कृष्ण' महामंत्र वेद अथवा शास्त्रों में कहाँ है? (Page 63)

Question: Where can we find the 'Hare Kṛṣṇa' *mahā-mantra* in the Vedas or scriptures? (Page 63)

उत्तर—श्रीहरिनाम साक्षात् श्रीहरि हैं।

Answer—*Śrī Hari-nāma* is directly Śrī Hari Himself.

शास्त्रों के प्रकाशित होने से पहले महामंत्र अथवा श्रीनाम ही थे, इसका प्रमाण हम चतुःश्लोकी भागवत के 'अहमेवासमेवाग्रे' (श्रीमद्भागवत—2/9/33) श्लोक में पाते हैं।

Even before being revealed in the scriptures, the *mahā-mantra* and *Śrī Nāma* (the holy name of Lord Kṛṣṇa) were present in this world. The evidence for this can be seen in the *śloka* (verse) '*aham evāsam evāgre*' (*Śrīmad-Bhāgavatam* 2.9.33) of the *Catuḥ-ślokī Bhāgavata*.

सर्वतन्त्र-स्वतंत्र श्रीनाम शास्त्राधीन नहीं हैं।

The all-powerful, supremely sovereign and independent holy name of Lord Kṛṣṇa (*Śrī Nāma*) is not dependent on the scriptures.

शास्त्र जिनकी इच्छा से प्रकाशित होते हैं, वह परात्पर वस्तु ही श्रीनाम अथवा महामंत्र हैं।

All the scriptures (*śāstra*) manifest by the desire of the greater than the

greatest transcendental object (*parātpara-vastu*) called *śrī-nāma* or *mahā-mantra*.

शास्त्र पहले हैं एवं श्रीनाम अथवा महामंत्र बाद में हैं—ऐसा नहीं है।

It is not true that the scriptures manifested first and Śrī Nāma or the *mahā-mantra* manifested later.

ब्रह्मसंहिता ग्रन्थ में देखा जाता है कि ब्रह्मा के हृदय में सर्वप्रथम श्रीनाम ही प्रकाशित हुए थे।

In the *Brahma-saṁhitā* book, it is seen that *Śrī Nāma* was first revealed in the heart of Lord Brahmā.

ॐ आहस्य ज्ञानन्तो नाम चिद्विवक्तन् महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॐ तत्सत्

oṁ āsya jānanto nāma-cid-vivaktan mahas te viṣṇo sumatiṁ bhajāmahe oṁ tat sat

Meaning: "O Viṣṇu, all the *Vedas* appear from Your name, which is fully conscious and all-illuminating. Your name is the personification of transcendence and supreme bliss, and it is the embodiment of easily obtainable transcendental knowledge. I worship You by thoughtfully performing continuous chanting of Your name."

—इस मंत्र में प्राचीनतम ऋग्वेद से भी श्रीनाम के विषय में उल्लेख किया है।

—This *mantra* is sourced from the Ṛg Veda, the oldest of all *Vedas*, and it extols the glories of the divine name (Śrī Nāma).

यजुर्वेदीय कलिसन्तरणोपनिषद्, बृहन्नारदीयपुराण, ज्ञानामृतसार, अथर्ववेद की पिप्पलादशाखा, श्रीकृष्ण चैतन्यचरित-महाकाव्य, ब्रह्मयामल श्रीचैतन्यभागवत, श्रीचैतन्यमंगल, राधातन्त्र, पद्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, सनतकुमार-संहिता, श्रीचैतन्यचरितामृत, अनन्तसंहिता, श्रीमद्भागवत, अथर्ववेदीय चैतन्योपनिषद्, अग्निपुराण, श्रीबृहद्भागवतामृतम्, श्रीनामकौमुदी आदि विभिन्न ग्रन्थों में महामंत्र अथवा श्रीनाम के विषय में उल्लेख है।

One finds the references to the *mahā-mantra* or *śrī-nāma* in the following important scriptures: *Yajurvedīya Kali-santaraṇopaniṣad, Bṛhan-nāradīya-purāṇa, Jñānāmṛta-sāra, Pippalāda-śākhā of Atharva-veda, Śrī Kṛṣṇa-caitanya-carita-mahākāvya, Brahma-yāmala, Śrī Caitanya-bhāgavata, Śrī Caitanya-maṅgala, Rādhā-tantra, Padma-purāṇa, Brahmāṇḍa-purāṇa, Sanatakumāra-saṁhitā, Śrī Caitanya-caritāmṛta, Ananta-saṁhitā, Śrīmad Bhāgavata, Atharva-vedīya Caitanyopaniṣad, Agni-purāṇa, Śrī Bṛhad-bhāgavatāmṛtam and Śrī Nāma-kaumudī.*

स्वयं भगवान् श्रीगौरसुन्दर के श्रीमुख से भी हम महामंत्र का उपदेश पाते हैं।

We also receive the teaching of the *mahā-mantra* from the divine mouth of Lord Śrī Gaurasundara Himself.

प्रश्न—हमारा एकान्तिक कर्त्तव्य क्या है? (Page 64)

Question—What is our sole duty? (Page 64)

उत्तर—हमारे बहुत से कार्यों में कौन-सा हमारा एकान्तिक कर्त्तव्य है?

Answer—Among our many tasks, which one is our sole duty?

Answer—What is the singular, ultimate purpose of our existence among our many endeavors?

इस विषय में श्रीशिवजी कहते हैं—जीव के जितने प्रकार के कर्त्तव्य हैं, उनमें विष्णु की सेवा ही उसका सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है।

In this regard, Lord Śrī Śiva says, "Among all the duties a living being has, serving Lord Viṣṇu is the best duty."

In this matter, Śrī Śiva says—Among all the duties of a living being, service to Lord Viṣṇu is the supreme duty.

In this connection, Lord Śiva declares that of all the duties a living being has, the highest is the service of Lord Viṣṇu.

किन्तु उसकी अपेक्षा भी विष्णु भक्त अर्थात् गुरु-वैष्णवों की सेवा ही अधिक श्रेष्ठ कर्त्तव्य है।

However, in comparison to serving Lord Viṣṇu, serving His devotees—namely the spiritual master and *Vaiṣṇavas*—is a much greater and higher duty.

श्रीहरि परतत्त्व वस्तु हैं।

Śrī Hari is *para-tattva-vastu* (the Absolute Truth and the worshipful object).

परतत्त्व अप्राकृत विशेषताओं से युक्त व्यक्तित्व हैं।

The *para-tattva* (the Absolute Truth) is a personality with transcendental characteristics.

हमारी सत्ता भी नित्यव्यक्तित्व-सम्पन्न है।

Our existence too is endowed with eternal individuality.

अतएव नित्य और पूर्णव्यक्तित्व युक्त परतत्त्व की उपासना करना ही हमारा प्रयोजन है।

Therefore, our purpose is to worship the Absolute Truth (*para-tattva*) who is eternal and has complete personality and individuality (*vyaktitva*).

व्यक्ति के साथ व्यक्ति का सम्बन्ध ही स्वाभाविक एवं सम्पूर्ण प्रयोजन को प्रदान करने वाला है।

The relationship of a person with another person is what provides the natural and complete purpose.

परतत्त्व के साथ हमारा सम्बन्ध और प्रयोजन होने पर हमारे समस्त कार्य ही परतत्त्व के उद्देश्य से कृत होने संगत हैं।

When we have an eternal relationship (*sambandha*) with the Absolute Truth (*para-tattva*) and our life's goal (*prayojana*) is to satisfy the Absolute Truth, we should naturally perform all our actions to please the Absolute Truth.

प्रश्न—परतत्त्व का साक्षात्कार किस प्रकार होगा? (Page 65)

Question—How will we realize the *para-tattva* (the Absolute Truth)? (Page 65)

उत्तर—यहाँ (इस जगत में) परतत्त्व का साक्षात्कार प्राप्त नहीं होता।

Answer: Here (in this world) one cannot realize the *para-tattva* (the Absolute Truth).

हमारी वर्त्तमान नश्वर इन्द्रियों के द्वारा परतत्त्व के निकट पहुँचा नहीं जा सकता।

The Supreme Reality cannot be reached through our present mortal senses.

We cannot reach near the *para-tattva* (the Absolute Truth) by our present senses which are perishable and evanescent.

तब फिर उपाय क्या है?

Then what is the solution?

हमारे द्वारा अकपट सेवोन्मुख होने पर परतत्त्व स्वयं कृपापूर्वक अवतीर्ण होकर हमारी इन्द्रियों की समस्त बहिर्मुखता को दूरकर हमारी इन्द्रियों को सेवा करने की योग्यता प्रदान करते हैं।

When we are sincerely oriented towards service, the Supreme Truth Himself gracefully incarnates and removes all the external orientation of our senses and gives our senses the ability to serve.

यदि हम परतत्त्व-भगवान की सेवा करने के लिये यत्न नहीं करें, तो अन्य वस्तु की

सेवा करके निष्कृति प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

If we do not make efforts to serve the Supreme Reality-God, then we will not be able to achieve salvation by serving anything else.

आत्मा के द्वारा ही परमात्मा की सेवा सम्भव है।

Service to Paramātmā (the Supersoul) is possible only through the soul (*ātmā*).

सेवा प्राप्त करने का एकमात्र उपाय शरणागति है।

The only way to attain devotional service is through surrender (*śaraṇāgati*).

हम अपने ऊपर निर्भर होकर विपत्तिग्रस्त नहीं होंगे, अपितु भगवान के ऊपर सम्पूर्ण निर्भर करेंगे।

We will not fall into trouble by depending on ourselves, but will depend completely on Bhagavān.

भगवान की सेवा करने जाकर हम अन्य कार्य नहीं कर पाये, ऐसा विचारकर शोक नहीं करेंगे।

We will not lament thinking that because we went to serve Bhagavān we were unable to do other work.

परतत्त्व की सेवा से विहीन होने पर जागतिक परोपकार में नियुक्त होना अथवा आत्मीयस्वजनों की सेवा करना ही कर्त्तव्य के रूप में विवेचित होगा किन्तु आत्मा का एकमात्र लक्ष्य, एकमात्र नित्य आकांक्षा—परतत्त्व की नित्य सेवा है।

If one is devoid of the service of the Absolute Truth (*para-tattva*), engaging in worldly welfare or serving one's own relatives would be considered as duty, but the only goal of the soul, the only constant aspiration is the constant service of the Supreme Reality.

सर्वप्रथम स्वयं आचरणीय होने पर ही मंगल है, अन्यथा संसार-चक्र में ही भटकना होगा।

First of all, it is good only if one behaves well, otherwise one will have to wander in the cycle of the world.

प्रश्न—भक्तलोग सेवा छोड़कर क्या अन्य किसी वस्तु की अभिलाषा करते हैं? (Page 66)

Question: Do devotees desire anything other than service? (Page 66)

उत्तर—नहीं। धर्म-अर्थ-काम तो पदाघात करने के विषय हैं।

Answer—No. The three ultimate goals of human life (*puruṣārthas*)—mundane religiosity (*dharma*), economic development (*artha*), sense gratification (*kāma*) are the things to be trampled upon.

भोगी लोग इन सभी वस्तुओं के प्रार्थी होते हैं।

Those who chases after sense objects desire all these things (dharma, artha and kāma).

शुद्धभक्त कभी भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नहीं चाहते।

Pure devotees never desires *dharma* (mundane religiosity), *artha* (economic development), *kāma* (sense gratification) or *mokṣa* (liberation).

वे एकमात्र सेवा के प्रार्थी होते हैं। चित्त के निर्मल होने की आवश्यकता है अन्यथा सेवा का अभिनय करके वञ्चित होना होगा।

They only desire devotional service (*seva*). The heart needs to be pure; otherwise, one will be deprived by merely pretending to render devotional service.

Version: They only desire devotional service. Unless one's mind is pure, one will make a vain show of rendering devotional service and be cheated.

मेरे बहुत से बन्धु-बान्धव थे किन्तु वे अब अन्य कार्यों में नियुक्त हो गये हैं।

I had many relatives and friends, but now they are engaged in other activities.

वे बाहर से तो हरिभजन की चेष्टा दिखलाते है किन्तु कार्यतः अन्तर में अन्य विषयों में नियुक्त हैं।

Outwardly, they appear to be engaged in *hari-bhajana* (devotional service of Lord Hari), but in reality, they are involved in other matters internally.

प्रश्न—माप लेने का क्या अर्थ है? (Page 66)

Question—What does it mean to take measurements? (Page 66)

Question—What does it mean to measure something? (Page 66)

उत्तर—माप लेने का अर्थ है—भोग करना।

Answer—The meaning of "taking a measure" is "to enjoy sense gratification".

Answer—The meaning of taking a measurement is—to enjoy sense gratification.

वास्तविक विचार से मुक्ति प्राप्त करने के लिये नेत्र, कर्णादि इन्द्रियों के द्वारा माप लेने की प्रवृत्ति को छोड़ देना होगा।

To attain true liberation, one must abandon the tendency to measure with the senses such as eyes and ears.

प्रश्न—क्या इन्द्रियों से अतीत भगवान की सेवा इन जड़-इन्द्रियों के द्वारा होती है? (Page 66)

Question—Can the service of Bhagavān, who is beyond the senses, be performed through these inanimate senses? (Page 66)

उत्तर—'स्थूल शरीर के द्वारा भगवान की सेवा की जाती है'—ऐसा विचार कोई न करे।

Answer: No one should think that 'Bhagavān is served through the gross body.'

चक्षु, कर्णादि स्थूल इन्द्रियों एवं मनादि सूक्ष्म इन्द्रियों के द्वारा हरिभजन नहीं होता।

Hari-bhajana (devotional service to Bhagavān) cannot be performed through the gross senses like the eyes and ears, nor through the subtle senses like the mind.

किन्तु ये इन्द्रियाँ ही इस जगत का आश्रय हैं, इसीलिये श्रीलरूप गोस्वामी प्रभु ने

इन्द्रियाँ किस प्रकार अतीन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों से अतीत राज्य में पहुँच सकती हैं, इसका एक कौशल बतलाया है।

But these senses are the support and basis of this world, that is why Śrīla Rūpa Gosvāmī Prabhu has explained a skill as to how the senses can reach the super-sensory state [state beyond the cognizance (reach) of the senses], that is, the state (kingdom) beyond the senses.

श्रीलरूप गोस्वामी ने कहा है कि इन्द्रियाँ जब अपनी चेष्टा से अतीन्द्रिय वस्तु को प्राप्त करने की चेष्टा करती हैं, तब वे अतीन्द्रिय वस्तु तक पहुँच नहीं पातीं।

Śrīla Rūpa Gosvāmī has said that when the senses try to obtain the super-sensory object [*atīndriya vastu*, an object beyond the cognizance (reach) of the senses] by their efforts, then they are unable to reach the super-sensory object.

इसीलिये आरोहवादी अप्राकृत वस्तु का सन्धान नहीं पाते।

isīliye ārohavādī aprākṛta vastu kā sandhāna nahīṃ pāte.

That is why the adherents of the doctrine of the ascending path (*āroha-vādī*) cannot find the transcendental object (*aprākṛta-vastu*).

किन्तु जब इन्द्रियाँ अतीन्द्रिय-राज्य से अवतीर्ण सेवोन्मुखता से आलोकित होती हैं, तभी इन्द्रियों को अतीन्द्रिय विषय को धारण करने की योग्यता प्राप्त होती है।

The propensity to render submissive and unalloyed devotional service descends from the transcendental realm which is beyond the perception of the mundane senses. When the senses are illuminated by such a propensity only then do they acquire the ability to grasp the supersensory object.

Alternative: The propensity for pure and submissive devotional service comes from the transcendental realm, beyond the perception of mundane senses. Only when the senses are illuminated by this propensity do they gain the ability to grasp the supersensory object.

तब फिर इन्द्रियों की बहिर्मुखता नहीं रहती, इन्द्रियाँ सेवोन्मुखता से प्रकाशित होकर अतीन्द्रिय के अन्तःपुर में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त करती हैं।

Then the senses no longer remain averse to Lord Kṛṣṇa. They become enlightened with the willingness to render pure devotional service and gain the right to enter Lord Kṛṣṇa's confidential realm, which transcends the mundane senses.

प्रश्न—अधः पतन का क्रम क्या है?

Question—What is the order of degeneration?

Question—What is the order of downfall of a devotee of Lord Kṛṣṇa?

उत्तर—कार्ष्ण (कृष्ण भक्त) से निम्न स्तर पर आने से वैष्णव (विष्णु भक्त), वैष्णव से निम्न स्तर पर आने पर निर्विशेषवादी, वहाँ से निम्न स्तर पर सद्भोगी अथवा कर्मी, वहाँ से उच्छृंखल व्यभिचारी अन्याभिलाषी होना पड़ता है।

Answer—When a *sādhaka* falls from the state of being a *kārṣṇa* (a devotee of Lord Kṛṣṇa), he becomes a *Vaiṣṇava* (a devotee of Lord Viṣṇu). If he then declines from the status of a *Vaiṣṇava*, he becomes a *nirviśeṣa-vādī* (one who believes that the Absolute Truth is without qualities or personality). Falling further from this status, he becomes a *sad-bhogī* (someone seeking enjoyment from pious deeds) or a *karmī* (a fruitive worker). Ultimately, continued decline leads him to become a hedonistic person with desires unrelated to satisfying Lord Kṛṣṇa, engaging in the unrestricted pursuit of immoral activities for boundless sense gratification.

प्रश्न—'हरे' शब्द का क्या अर्थ है? (Page 67)

Question—What is the meaning of the word 'Hare'? (Page 67)

उत्तर—कुछ लोग 'हरे कृष्ण' नाम में हरि-शब्द के सम्बोधन रूप को 'हरे' कहकर विचार करते हैं।

Answer—Some people consider the vocative form of the word 'Hari' in the name 'Hare Kṛṣṇa' as 'Hare'.

जो विषयतत्त्व की तुलना में अधिकतर आश्रयतत्त्वनिष्ठ हैं अर्थात् जिनकी सेवावृत्ति अधिकतर की प्रकाशित है, वे हरा—शब्द के सम्बोधन से हरे (अर्थात् राधे) पद समझते हैं।

Those who are more devoted to *āśraya-tattva* (the devotees of Lord Kṛṣṇa who are the receptacle of devotional mellows) than to *viṣaya-tattva* (Lord Kṛṣṇa who is the enjoyer of devotional mellows exhibited by His devotees), that is, those whose attitude of devotional service is more prominently manifested, understand that in the vocative case, the word 'Harā' becomes the term 'Hare' (that is, 'Rādhe').

श्रीराधाजी प्रीति के द्वारा कृष्ण का मन हरण करती हैं, अत: उनका एक नाम हरा है। **कृष्णमनो हरति इति हरा।**

Śrī Rādhā steals the heart of Lord Kṛṣṇa through her love, so one of Her names is Harā. ***kṛṣṇa-mano harati iti harā.***

प्रश्न—क्या भक्ति पथ का ही आश्रय करना चाहिए? (Page 67)

Question—Should one only follow the path of devotional service? (Page 67)

उत्तर—एकमात्र भगवद्भक्ति को छोड़कर कर्म-ज्ञानादि की चेष्टा मूढ़ता अर्थात् अनाचार है।

Answer—One must not purse the reward-seeking activities (*karma*) or the path of cultivating knowledge (*jñāna*) aimed at impersonal liberation. As a matter of fact, any endeavor other than devotional service (*bhakti*) to Bhagavān is foolishness, a great discrepancy and a forbidden activity.

श्रीराधागोविन्द की सेवा के अतिरिक्त और जितने विचार हैं, वे सब आत्मा की नित्यवृत्ति को आच्छादित करने के विचार हैं।

All thoughts other than the devotional service of Śrī Rādhā Govinda are thoughts covering the eternal function of the soul.

हरि सब कुछ हरण करते हैं। क्या हरण करते हैं? वे चमड़ा, मांस हरण नहीं करते। वे मुझे अर्थात् आत्मा को चाहते हैं।

Lord Hari takes away everything. What does He take away? He does not take away skin or flesh. He wants me, that is, the soul.

भक्ति का आश्रय ग्रहण करने पर अर्थात् भगवान के ऊपर निर्भर करने पर जीव के समस्त जागतिक दायित्व समाप्त हो जाते हैं।

By taking shelter in devotional service (*bhakti*), that is, by depending on Bhagavān, all worldly responsibilities of a living entity come to an end.

प्रश्न—ॐकार शब्द का अर्थ क्या है? (Page 67)

Question—What is the meaning of the word Oṁkāra? (Page 67)

उत्तर—नाम की प्रथम अवस्था—प्रणव अर्थात ॐकार है और उसकी सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित अवस्था कृष्ण है।

Answer—The first stage of the holy name is Praṇava, or Oṁkāra, and its fully manifested state is Lord Kṛṣṇa.

प्रश्न—त्रिदण्डी किसे कहते हैं? (Page 68)

Question—Who is known as *tri-daṇḍī*? (Page 68)

उत्तर—मनुष्य जीवन की सर्वोत्तम आशा त्रिदण्डी होना है।

Answer: The best hope of human life is to be a *tri-daṇḍī* (a *sannyāsī* carrying a triple staff).

त्रिदण्डी का अर्थ है—'अमानी-मानद-सहिष्णु हरिकीर्त्तनकारी'।

The meaning of the word *tri-daṇḍī* is—One who does not expect any respect for oneself (*amānī*), and one who offers all the respect to the others (*mānada*), one who is tolerant and one who performs the *kīrtana* of the holy name, form, qualities and pastimes of Lord Hari all the time.

The meaning of the word *tri-daṇḍī* is—One who does not expect any respect for oneself (*amānī*), who offers all respect to others (*mānada*), who is tolerant, and who constantly performs the *kīrtana* (loud glorification) of the holy name, form, qualities, and pastimes of Lord Hari.

वैष्णव ही देवता हैं। किन्तु वे देवता होने का अभिमान या फिर शर्मा (ब्राह्मण होने का) अभिमान नहीं करते।

Vaiṣṇavas are indeed *devatās* (worshipable personalities). But they do not take pride in being *devatās* (worshipable personalities) or in being *śarmā* (*brāhmaṇas*).

वे तृणादपि सुनीच होते हैं।

They are *tṛṇād-api sunīca* (more humble than a blade of grass).

त्रिदण्ड ग्रहण करना ब्राह्मणजीवन का सर्वप्रधान कर्त्तव्य है।

Accepting the *tri-daṇḍa* (triple staff of the order of renunciation) is the foremost duty of *brāhmaṇa* life.

काय-मन-वाक्य इन तीनों को अन्य कार्यों में नियुक्त नहीं करके भगवद्सेवा में नियुक्त करना ही त्रिदण्डग्रहण है।

Accepting the triple staff of renunciation (*tri-daṇḍa*) means to use these three—body, mind, and speech—in the service of Bhagavān, rather than engaging them in other activities.

Alternative: Accepting the triple staff of renunciation (*tri-daṇḍa*) signifies dedicating one's body, mind, and speech exclusively to the service of Bhagavān, rather than pursuing other endeavors.

प्रश्न—स्त्री के संग वास करना क्या उचित है?

Question—Is it right to live with a woman?

Question—Is it appropriate to have sexual relations with a woman?

उत्तर—गृहस्थ केवल सन्तान-उत्पत्ति के उद्देश्य से यथासमय स्त्री के साथ एकत्र वास करेंगे।

उत्तर—The householder will associate closely with their legally wedded wife at the right time with the sole intention of begetting a devotee child from her womb.

Alternative: A householder may engage in conjugal relations with their lawfully wedded spouse, at an appropriate time, solely for the purpose of producing a spiritually (devotionally) inclined offspring.

अपनी इन्द्रियों के सुख के लिये स्त्री के संग वास करना अनुचित है। अपनी इन्द्रियों का तर्पण हरिभक्ति में बाधक है।

It is improper to associate with a woman for the pleasure of one's senses. Attempts to please one's senses is an obstacle in the devotional service of Lord Hari.

Alternative: Associating with a woman solely for sensual gratification is considered inappropriate. Such indulgence in material pleasures hinders the path of devotional service to Lord Hari.

प्रश्न—क्या कृष्ण भजन के अतिरिक्त जीवों का कोई और कार्य है? (Page 68)

Question—Is there any other duty for living entities other than rendering devotional service to Lord Kṛṣṇa? (Page 68)

उत्तर—नहीं। श्रीकृष्ण के वचन हैं—तुम सभी का एकमात्र कृत्य मेरी उपासना है।

Answer—No. Lord Śrī Kṛṣṇa has said—The only duty of all of you is to worship Me.

मुझे लेकर ही तुम्हारे समस्त कार्य हैं। तुम्हारा और कोई कार्य नहीं है।

All your actions are for My pleasure alone. You have no other duty other than satisfying Me.

तुम्हारे नेत्र, कान, मुख, नाक सबके द्वारा मेरा कार्य (अर्थात् मेरी सेवा) ही तुम्हारा एकमात्र कृत्य है।

Your only duty is to render service to Me by Your eyes, ears, mouth and nose.

प्रश्न—क्या साधु-गुरु की पदधूलि ग्रहणीय नहीं है? (Page 68)

Question—Is the dust of the lotus feet of a saintly person or Guru (spiritual master) unacceptable? (Page 68)

उत्तर—साधु-गुरु के द्वारा कृपापूर्वक अपनी पदधूलि देने पर वह ग्रहणीय और

मंगलकर है।

Answer—When a saintly person (*sādhu*) or Guru (the spiritual master) graciously offers the dust of his lotus feet, it is acceptable and auspicious.

बलपूर्वक अथवा अनुरोध करके साधु की पदधूलि लेने पर अमंगल की सम्भावना है।

There is a possibility of misfortune if one takes the dust of the lotus feet of a saintly person (*sādhu*) either by force or by coaxing.

एकदिन वृन्दावनचन्द्र लस्कर नामक व्यक्ति के द्वारा मेरे श्रीगुरुदेव (श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज) के पदस्पर्श करने पर उन्होंने दुःखित होकर कहा था—तुमने मेरा पदस्पर्श किया, तुम्हारा सर्वनाश हो।

One day, when a person named Vṛndāvana-candra Laskara touched the lotus feet of my Śrī Gurudeva (Śrīla Gaura-kiśora Dāsa Bābājī Mahārāja), he said in grief—you have touched my feet, may you be totally ruined.

लस्कर के द्वारा मुझे यह बात बतलाने पर मैंने कहा—'श्रीगुरु के चरणकमल ब्रह्मादि के लिये भी दुर्लभ वस्तु हैं।

When Laskara told me this, I said, 'The lotus feet of Śrī Guru are unattainable for even for Lord Brahmā and other demigods.

उनके श्रीचरणों का स्पर्श करने का हमारा क्या अधिकार है? हमारी योग्यता नहीं होने पर हम पापमय और अपराधमय हृदय लेकर उनके निकट नहीं जा सकते।

What right do we have to touch his lotus feet? If we do not have the qualification, we cannot go near him with a heart that is full of sins and offences.

मेरे श्रीगुरुपादपद्म ने एकदिन निजगुणों से कृपा करके स्वयं अपने श्रीचरणों की धूलि लेकर प्रचुर परिमाण में मेरे मस्तक को अभिषिक्त किया था।

One day my Śrī Guru-pāda-padma (the spiritual master whose feet resemble fragrant lotuses), by his grace, himself took the dust from his lotus feet and anointed my head abundantly.

उनकी इतनी दया है।

He is so kind.

प्रश्न—भगवान किस प्रकार रक्षा करते हैं? (Page 69)

Question—How does Bhagavān protect us? (Page 69)

उत्तर—वास्तव सत्य भगवान सर्वज्ञ हैं।

Answer—Bhagavān, who is the Absolute Truth, is omniscient.

वे करुणामय वास्तव सत्य पतित जीवों का उद्धार करने के लिये अर्थात् उनकी विकृत धारणा को के परिवर्त्तित करने के लिये अपने महामुक्त प्रतिनिधियों को इस जगत में में भेजते हैं।

That compassionate Absolute Truth sends His highly liberated representatives into this material world to rescue the fallen living entities, that is, to transform their distorted perceptions.

प्रश्न—क्या चौबीस-घण्टे ही भगवान की सेवा करनी कोई चाहिए? (Page 69)

Question—Should one serve Bhagavān 24 hours a day? (Page 69)

उत्तर—हमें चौबीस-घण्टे ही परमार्थ के साथ संयुक्त रहना होगा।

Answer—We must remain connected with the ultimate goal of human life (*paramārtha*) twenty-four hours a day.

चौबीस घण्टे में-से एक सैकेण्ड के लिये भी हम और कुछ इच्छा नहीं करेंगे, यही हमारा स्वरूप-धर्म है।

We will not desire anything else even for a second in 24 hours, this is our constitutional function (*svarūpa-dharma*).

यदि हम अपनी प्रत्येक चेष्टा कार्य को, प्रत्येक अनुशीलन को भगवान के सम्बन्ध से निर्बन्ध कर सकें, तो ऐसा होने पर चौबीस-घण्टे में-से चौबीस-घण्टे ही हम भगवत-सेवा के अतिरिक्त निश्चित ही अन्य कोई कार्य नहीं करेंगे।

If we can tightly bind our every effort, every activity, every practice to the relationship with Bhagavān, then in all the twenty-four hours we will certainly not do any other work except the service of Bhagavān.

वैष्णवगण चौबीस-घण्टे हरिभजन करते हैं किन्तु ऐसे वैष्णव अधिक नहीं पाये जाते।

Vaiṣṇavas render devotional service to Lord Hari for twenty-four hours, but such *Vaiṣṇavas* are not found in large numbers.

प्रश्न—सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ कौन सा है? (Page 69)

उत्तर—श्रीमद्भागवत के समान महामूल्य ग्रन्थ इस जगत में नहीं है।

Question—Which is the best book?

Answer—There is no book as valuable as *Śrīmad-Bhāgavata* in this world.

साधु-गुरु के संग और सेवा के अतिरिक्त इस भागवत ग्रन्थ के विचारों को समझना अति कठिन कार्य है।

It is very difficult to understand the ideas of this scripture known as *Śrīmad-Bhāgavatam* without taking the association and rendering loving devotional service to the saintly persons (*sādhus*) and the spiritual master (*guru*).

प्रश्न—दुर्बुद्धि क्या है? (Page 70)

Question—What is bad wisdom? (Page 70)

उत्तर—मैं जड़ का भोक्ता हूँ—यही दुर्बुद्धि है।

Answer—I am an enjoyer of dull matter—this is bad wisdom.

यह दुर्बुद्धि जीव का सर्वनाश करती है। मैं भगवान का सेवक हूँ—यही सुबुद्धि है।

This bad wisdom ruins the living entity. I am Bhagavān's servant—this is good wisdom.

प्रश्न—भगवान किसके निकट प्रकाशित नहीं होते? (Page 70)

Question—Who are the persons to whom Bhagavān does not reveal Himself? (Page 70)

Question—To whom does Bhagavān not reveal Himself?

उत्तर—भगवान विभुचित् हैं और जीव अणुचित् है।

Answer—Bhagavān is the supreme infinite consciousness (*vibhu-cit*) and the living entity is the atomic consciousness (*aṇu-cit*).

अणु में-से ही यदि फिर कोई चोरी करके अपने लिये कुछ रख ले अर्थात् भगवान को इतना (अणुभाग) भी नहीं दूँगा, यह विचार करे, तो ऐसा होने पर विभुचित् ऐसे जीव के समक्ष प्रकाशित नहीं होते।

If some atomic conscious living entity steals and keeps something for himself, that is, he thinks that he will not give even this much (an atom) to Bhagavān, then in such a case, the supreme infinite consciousness (*vibhu-cit*) does not appear before such a living entity (*jīva*).

Alternative: If an atomic-sized conscious living entity steals and retains something for itself, believing it will not offer even this infinitesimal amount to Bhagavān, then the Supreme Infinite Consciousness (*vibhu-cit*) does not manifest before such a living entity (*jīva*).

प्रश्न—ज्ञान और विज्ञान क्या हैं? (Page 70)

Question—What is knowledge (*jñāna*) and realized knowledge (*vijñāna*)? (Page 70)

उत्तर—ज्ञान का अर्थ है—'भगवत्-ज्ञान' और विज्ञान का अर्थ है—'परिकर वैशिष्ट्य के साथ भगवान का ज्ञान'।

Answer—Knowledge means '*bhagavat-jñāna*' (knowledge of Bhagavān) and *vijñāna* means 'knowledge of Bhagavān along with the specialities and peculiarities of His eternal associates (*parikaras*).

प्रश्न—क्या जो स्वयं को प्रिय लगता है, वही भक्ति है? (Page 70)

Question—Can the activities that give pleasure to oneself and one's senses be termed as devotional service (*bhakti*)? (Page 70)

उत्तर—नहीं। जो कृष्ण को प्रिय लगे, वह करना ही भक्ति है। जो मुझे प्रिय लगता है वह भक्ति नहीं अपितु अन्याभिलाष है।

Answer—No. Only performing the activities that are pleasing to the transcendental senses of Lord Kṛṣṇa can be termed as devotional service (*bhakti*). Performing activities that give pleasure to oneself and one's senses cannot be termed devotional service (*bhakti*), but it is counted as *anya-abhilāṣa* (desires other than to serve Śrī Śrī Rādhā-Kṛṣṇa).

इसलिये भोगी होने पर सुविधा नहीं होगी, त्यागी होने पर भी सुविधा नहीं होगी भक्त होना होगा, अपनी स्वतंत्रता का परित्याग कर भगवान का आश्रय ग्रहण करना होगा एवं उनके सुख के लिये यत्न करना होगा।

Lord Kṛṣṇa will not be pleased if we become staunch sense gratifiers (*bhogīs*), He will not be pleased if we become a *tyāgī* (a renunciate or ascetic). We will have to give up our independence and take shelter of Bhagavān. We will have to strive for His happiness.

प्रश्न—क्या स्त्री-दर्शन करना निषिद्ध है?

Question—Is it totally forbidden to engage in *strī-darśana* (look at a woman lustily)?

उत्तर—संन्यासी-ब्रह्मचारी के लिये स्त्री-दर्शन करना निषिद्ध है।

Answer—It is forbidden for the *sannyāsīs* (persons in the renounced order of life) and *brahmacārīs* (celibate students under the care of a spiritual master) to engage in *strī-darśana* (looking at a woman lustily).

किन्तु यह विचार करके समस्त नारीजाति के प्रति बुरा विचार रखना बुद्धिमानी का कार्य नहीं है।

It is not at all wise to maintain an ill thought about the entire female race by thinking like this.

Edited: It is unwise to hold a negative view of all women by thinking this way.

भोग्यबुद्धि से नारी-दर्शन करना स्त्री-दर्शन है।

To glance at a woman with the mood that 'she is meant for my sense gratification' is called *strī-darśana*.

भोगबुद्धि से स्त्रीदर्शन निन्दनीय है।

Viewing a woman with a sense of enjoyment is condemnable.

To glance at a woman with the mood that she is an object of sense enjoyment is reprehensible.

यहाँ वस्तु (स्त्री) में दोष नहीं है, अपितु वस्तु के व्यवहार की वृत्ति में दोष है।

Here there is no defect in the *vastu* (object, living entity) called 'woman', but there is a gross fault in onlooker's conduct of not dealing respectfully with the woman.

Edited: Here, there is no fault in the object (woman), but the fault lies in one's dealing with the object.

जगत की विचित्रता हानिकारक अथवा दोषयुक्त नहीं है।

The variegatedness of this material world is not harmful or faulty.

किन्तु उस विचित्रता का असद्-व्यवहार ही निन्दनीय है। यदि जगत की विचित्रता भगवत-सेवा में नियुक्त हो, तो ऐसा होने पर वह वरणीय है।

But the wrong use of that variegatedness is condemnable. If the variegatedness of the world is used for the service of Bhagavān, then it is acceptable.

प्रश्न—मंगल का पथ क्या है? (Page 71)

Question—What is the path of auspiciousness? (Page 71)

Question—What is that path which leads the practitioner (*sādhaka*) to auspiciousness? (Page 71)

उत्तर—भगवान की सेवा ही एकमात्र मंगल का पथ है।

Answer—Rendering devotional service to Bhagavān is the one and only

path that leads the practitioner (*sādhaka*) to eternal auspiciousness.

हमारे द्वारा अपने प्रत्येक पदनिक्षेप, प्रत्येक निःश्वास-प्रश्वास, प्रत्येक कार्य कृष्ण से सम्बन्धित करके निर्बन्ध करना ही प्रयोजन है।

It is our aim and object to make sure that our every foot-step, our every inhalation and exhalation (breath), every activity is related to Lord Kṛṣṇa/

हम सर्वदा कृष्णसेवा के पथपर चलेंगे।

We shall always always walk on the noble path of devotional service to Lord Kṛṣṇa.

हम हरि-गुरु-वैष्णवों की सेवा को छोड़कर अन्य कोई कार्य नहीं करेंगे।

We shall never engage in any activity other than the service of Lord Hari, Guru and *Vaiṣṇavas*.

प्रश्न—पूर्णवस्तु क्या है? (Page 71)

Question—What is the *pūrṇa-vastu* (the complete conscious entity and factual substance)? (Page 71)

उत्तर—भगवान ही पूर्णवस्तु हैं।

Answer—Bhagavān is the *pūrṇa-vastu* (the complete conscious entity and factual substance).

पूर्ण के लिये ही यत्न करने की आवश्यकता है।

It is necessary that we endeavor to attain the *pūrṇa-vastu* (the complete conscious entity).

अपूर्ण के लिये दिन व्यतीत करने पर अपूर्णवस्तु ही प्राप्त होगी, पूर्ण वस्तु प्राप्त नहीं होगी।

If we spend our valuable time only to attain the incomplete entity (*apūrṇa-vastu*), we will not be able to attain the complete conscious entity and factual substance (*pūrṇa-vastu*).

प्रश्न—क्या प्रार्थनीय होना उचित है? (Page 71)

Question: What is that priceless object that we should pray for? (Page 71)

उत्तर—भगवान की कृपा ही हमारे लिये प्रतिक्षण प्रार्थनीय होनी उचित है। जीवमात्र का ही चरम लक्ष्य कृष्णप्रेम है।

Answer: It is fitting that every moment we should pray to Bhagavān to

bestow upon us His mercy. Every living entity's ultimate goal is to attain love for Lord Kṛṣṇa (*kṛṣṇa-prema*).

प्रश्न—जीवन्त साधु की कथा क्या अत्यन्त भक्तिप्रद होती है? (Page 71)

Question: Can the sweet narrations of Lord Kṛṣṇa's pastimes that emanate from the lotus mouth of a living and lively saintly person (*jīvanta-sādhu*) bestow high-class devotional service (*bhakti*) upon the listeners of those pastimes? (Page 71)

उत्तर—शक्तिशाली धनुर्धारी के द्वारा जिस प्रकार बाण की शक्ति प्रकाशित होती है, उसी प्रकार **जिसका जितना भक्तिबल होता है, उसकी कथा उतनी शक्तिशाली अथवा कार्यकारी होती है।**

Answer—A powerful archer manifests the full strength and efficacy of an arrow through his exceptional dexterity, acumen, and skill. Similarly, the effectiveness and benefit of a discourse on devotional service (*bhakti*) delivered by a saintly person will be proportionate to the level of his own devotional strength. [The more advanced a saintly person is on the path of devotional service, the greater the ability of his devotional discourse to rectify the unwanted habits (*anarthas*) of the listeners.]

इसीलिये साधारण साधु की कथा और तेजस्वी अथवा जीवन्त साधु की कथा में विशेष वैशिष्ट्य रहता है।

There is a profound difference in the quality of devotional discourse delivered by an ordinary saintly person compared to that given by an effulgent (*tejasvī*) or living (lively, *jīvanta*) saintly person.

जिनका सुसंस्कार प्रबल होता है, वे जीवन में इसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

Those who have very strong and favorable devotional impressions (*su-saṁskāras*) from past or present lives can directly experience this in their present lives.

प्रश्न—पण्डित कौन हैं? (Page 71)

Question—Who is a true *paṇḍita* (scholar)? (Page 71)

उत्तर—पण्डा अर्थात् जिनकी वेद-उज्ज्वला (वेद के ज्ञान से उज्ज्वलित) बुद्धि है, ऐसे भगवद्-भजनकारी भक्त ही वास्तविक पण्डित होते हैं।

Answer—A devotee of Lord Kṛṣṇa who renders immaculate devotional

service to Bhagavān Kṛṣṇa and possesses *paṇḍā* (intelligence illuminated by the transcendental wisdom of the *Vedas*) is a true *paṇḍita* (scholar).

'पण्डितो बन्धमोक्षवित्' अर्थात् किस कारणवश संसार-बन्धन होता है एवं किस उपाय से संसार से मुक्ति प्राप्त होती है, जो इस विषय से अवगत होते हैं, वही पण्डित हैं।

"Paṇḍito bandha-mokṣa-vit"—a scholar or *paṇḍita* is that rare individual who understands what causes helpless living entities to become entangled in the deceptive web of material existence and cycle of repeated birth and death (*saṁsāra*), and also knows the means by which they can be disentangled and liberated from this entanglement.

Alternative: ***"Paṇḍito bandha-mokṣa-vit"***—A *paṇḍita* is a rare individual who comprehends the root causes of a living entity's entrapment within the illusory material world and the endless cycle of birth and death. Such a scholar also possesses knowledge of the path leading to liberation from this bondage.

'मूर्खोदेहाद्यहं-बुद्धिः'। देहात्मबुद्धिविशिष्ट अर्थात् स्वयं को देह माननेवाले व्यक्ति ही मूर्ख हैं।

'*Mūrkhodehādyahaṁ-buddhiḥ*'. Foolish persons are characterized by *dehātma-buddhi* (misconception that material body is the real self.). In other words foolish persons regard their material body as their true self.

ऐसे व्यक्तियों के द्वारा डिग्री लेकर पण्डित-नामधारी होने पर भी वे मूर्ख पदवाच्य हैं।

Such persons may boast of being *paṇḍitas* (scholars) with lofty educational qualifications and university degrees, but in reality, they are fit to be called mere fools.

जागतिक पण्डितगण केवल जड़-शब्दों के अर्थमात्र जानते है।

The world's scholars know only the meanings of inanimate words.

वे देहात्मबुद्धि युक्त और मायाबद्ध होने के कारण शास्त्रों का अर्थ हृदयंगम करने में असमर्थ होते हैं।

Because they are endowed with *dehātma-buddhi* (misconception that one's material body is the real self) and are tightly bound by illusory potency of Lord Kṛṣṇa (*māyā*), they are unable to understand the meaning of the scriptures.

श्रीमद्भागवत और वेदादि शास्त्र भगवद्वस्तु होने के कारण वह केवल भक्ति के द्वारा ही ग्राह्य अथवा अनुभवनीय हैं।

Since *Śrīmad-Bhāgavatam* and other Vedic scriptures are *bhagavad-vastu*

(objects that are non-different from Śrī Bhagavān, the absolute truth), they can be perceived or experienced only through devotional service (*bhakti*).

जागतिक तथाकथित पण्डिताभिमानी व्यक्तिगण भक्तिहीन होने के कारण अहंकार में मत्त रहते हैं।

The persons of this world who are vainly proud of being so-called scholars are devoid of devotion (*bhakti*) to Lord Kṛṣṇa and as a result they remain falsely proud.

ऐसे दाम्भिकगण भगवान रूपी श्रीमद्भागवतादि शास्त्रों के अर्थ अथवा शास्त्रमर्म से किस प्रकार अवगत हो सकते हैं?

How can such hypocrites become aware of the meaning or essence of the scriptures like *Śrīmad-Bhāgavatam* which is the manifestation of Bhagavān?

पुतुलों का निर्माण करने वाले मिस्त्री क्या भगवान के विग्रह का दर्शन कर सकते हैं?

Can the artisans who make the idols see the worshipable Deity (*vigraha*) of Bhagavān?

धन, रूप, उच्च कुल और पाण्डित्य आदि सत्पात्र में नहीं होने पर सर्वनाशकर अथवा अमंगल का कारण होते हैं।

Wealth, beauty, birth in a high or aristocratic family, and erudition, if not present in a worthy person, become the cause of total destruction or inauspiciousness.

अभक्त के लिये यह सब मृत्युजनक, उद्वेगकर, संसारप्रापक और अहंकार वर्द्धक होते हैं।

For a non-devotee, all these attributes are fatal (cause of death), disturbing, lead to worldly miseries and the cycle of repeated birth and death (*saṁsāra-prāpaka*) and cause of increase in the false ego.

भक्त के लिये यह भूषण के समान होते हैं, दोषजनक अथवा अनर्थकर नहीं।

These attributes are like ornaments for a devotee; they are not defective or harmful and do not cause unwanted desires.

शास्त्रार्थ और शब्दार्थ एक वस्तु नहीं हैं।

Śāstrārtha (the meaning of the scriptures) and *śabda-artha* (the meaning of the words) are not the same thing.

शास्त्र जड़शब्द नहीं हैं।

The scriptures are not dull words.

शास्त्र शब्दब्रह्म—भगवान के अवतार हैं।

The scriptures are *śabda-brahma* (transcendental sound vibration) and the incarnation (*avatāra*) of Bhagavān.

इसीलिये महाजनों की उक्ति है—'भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्धया न च टीकया।'

That is why the *mahājanas* (great personalities who teach and set an example for others) say—'*bhaktyā bhāgavataṁ grāhyaṁ na buddhayā na ca ṭīkayā.*'

अर्थात् अचिन्त्य अतीन्द्रिय शास्त्र एकमात्र भक्ति के द्वारा ही भक्त के निकट अनुभव

का विषय होते हैं, जागतिक पाण्डित्य के द्वारा नहीं।

That is to say, the inconceivable and transcendental scriptures which are beyond senses become the subject of experience to the devotee only through devotional service (*bhakti*) and not through worldly erudition.

प्रश्न—कृष्ण सकाम-भक्त को भी भक्ति दान करते हैं, किन्तु शास्त्रों में अन्यत्र कहा गया है—

Question—Lord Kṛṣṇa bestows devotion to the devotees with material desires (*sakāma-bhaktas*) also, but it is said elsewhere in the scriptures—

'कृष्ण यदि छुटे भक्ते भुक्ति-मुक्ति दिया।
कभु भक्ति ना देन, राखेन लुकाईया॥'

'kṛṣṇa yadi chuṭe bhakte bhukti-mukti diyā
kabhu bhakti nā dena, rākhena lukāīyā'

If a devotee seeks liberation or material pleasure, Kṛṣṇa grants it instantly, but He keeps pure devotional service hidden.

भक्तगण यदि भुक्ति-मुक्तिकी आशा करते हैं, तो श्रीकृष्ण शुद्धभक्तितत्त्वको उनसे छिपाकर (अर्थात् उन्हें न देकर) उन्हें भुक्ति-मुक्ति देकर अपना छुटकारा पा लेते हैं।

If the devotees desire material enjoyment (*bhukti*) or liberation (*mukti*), then Śrī Kṛṣṇa, hiding categorical knowledge of pure devotional service (*śuddha-bhakti-tattva*) from them (i.e., not granting it to them), gives them material enjoyment (*bhukti*) or liberation (*mukti*) and thus frees Himself from them.

अतएव इन दोनों वचनों का सामञ्जस्य क्या है?

So what is the harmony between these two statements?

उत्तर—जो कपटता करके केवल बाहर से कृष्ण भजन का अभिनयमात्र करते हैं और हृदय से कृष्ण के निकट धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की वाञ्छा करते हैं, 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' अर्थात् जिनकी जैसी भावना होती है, उनकी सिद्धि भी उसके अनुरूप ही होती है—इस शास्त्रवाक्य के अनुसार कृष्ण उनकी अभिलषित इन समस्त तुच्छ वस्तुओं को देकर ही उनकी वञ्चना करते हैं, ऐसे कपटी व्यक्ति अथवा कुटिलात्मा को कदापि प्रेमभक्ति नहीं देते।

Answer—Those who hypocritically pretend to worship Lord Kṛṣṇa outwardly while desiring *dharma* (mundane religiosity), *artha* (economic development), *kāma* (sense gratification), and *mokṣa* (liberation) from Him within their hearts will receive what they desire. According to the scripture's

statement, '*yādṛśī bhāvanā yasya siddhir-bhavati tādṛśī*' (perfection is attained according to one's faith), Lord Kṛṣṇa deprives (cheats) them by giving them all the trivial things they desire. He never grants loving devotional service (*prema-bhakti*) to such deceitful or wicked souls.

किन्तु जो व्यक्ति कृष्ण-भजन करते-करते अज्ञानवशतः कृष्ण के निकट विषयसुख की प्रार्थना करता है, कृष्ण कृपापरवश होकर ऐसे निष्कपट अज्ञ व्यक्ति को साधु-गुरु के निकट हरिकथा श्रवण के सुयोग द्वारा अपने माधुर्यादि से आकृष्ट करके उसकी तुच्छ वासनाओं को दूर कर देते हैं।

But if any person, while rendering devotional service to Lord Kṛṣṇa, unknowingly prays to Lord Kṛṣṇa for sense gratification, Lord Kṛṣṇa, being subjugated by His causeless mercy, grants such an ignorant but non-duplicitous person the good opportunity to listen to the *hari-kathā* (narrations of His sweet pastimes) in the presence of saintly persons (*sādhus*) and spiritual master (*guru*), attracts him with His human-like sweetness (*mādhurya*) and removes his petty (insignificant) desires.

Alternative: But if any person, while rendering devotional service to Lord Kṛṣṇa, unknowingly prays to Him for sense gratification, Lord Kṛṣṇa, being subjugated by His causeless mercy, grants such an ignorant but non-duplicitous person the opportunity to listen to the *hari-kathā* (narrations of His sweet pastimes) in the presence of saintly persons (*sādhus*) and the spiritual master (*guru*). He attracts him with His human-like sweetness (*mādhurya*) and removes his petty desires.

मूल बात यह है कि कृष्ण-भजन का अभिनय करने वाले कपटी व्यक्ति को कृष्ण कदापि सुदुर्लभा प्रेमभक्ति प्रदान नहीं करते, उसके द्वारा वाञ्छित भुक्ति-मुक्ति देकर ही उसको विदा कर देते हैं।

The basic thing (The main point) is that Lord Kṛṣṇa never gives the rare treasure of loving devotional service (*prema-bhakti*) to a hypocrite who pretends to render devotional service to Him; He sends such a person away after granting him the sense gratification (*bhukti*) and liberation (*mukti*) he desired.

केवल निष्कपट भजनकारी अज्ञ व्यक्ति पर ही कृपा करके सद्गुरु के द्वारा उसे शुद्ध भक्ति अथवा प्रेमभक्ति प्रदान करते हैं।

Bhagavān Śrī Kṛṣṇa shows mercy only to an ignorant person who is free

from duplicity and hypocrisy and who is engaged in devotional service to Him. He bestows upon such a person pure devotional service (*śuddha-bhakti*) or loving devotional service (*prema-bhakti*) through the agency of a bona fide spiritual master (*sad-guru*).

Alternative: Lord Śrī Kṛṣṇa extends His mercy exclusively to the sincere and guileless person engaged in His devotional service. Through the guidance of a genuine spiritual master, He bestows upon such a person His pure devotional service (*śuddha-bhakti*) or loving devotional service (*prema-bhakti*).

प्रश्न—दीक्षागुरु और शिक्षागुरु किसे कहते हैं? चैत्त्यगुरु का क्या कार्य है?

Question—Who is called *dīkṣā-guru* (initiating spiritual master) and *śikṣā-guru* (instructing spiritual master)? What is the work of *caitya-guru* (spiritual master in the heart)?

उत्तर—गुरु तीन प्रकार के होते हैं—दीक्षागुरु, शिक्षागुरु और चैत्त्यगुरु।

Answer—There are three types of *gurus*—***dīkṣā-guru*** **(initiating spiritual master),** ***śikṣā-guru*** **(instructing spiritual master) and** ***caitya-guru*** **(spiritual master in the heart).**

गुरु कदापि लघु नहीं होते, गुरु ईश्वर वस्तु हैं।

Guru is never *laghu* (light, trifling, trivial, insignificant or unimportant). Guru is *īśvara-vastu*

गुरु के प्रति लघुज्ञान करके उन्हें श्रीकृष्णचैतन्य से पृथक मानना उचित नहीं है।

It is not proper to regard the Guru be *laghu* (light, trifling, trivial, insignificant or unimportant) and consider him separate from Śrī Kṛṣṇa Caitanya Mahāprabhu.

कृष्ण ही गुरु के रूप में जीवों की चेतनता को उद्बुद्ध करते हैं, उनका वास्तविक मंगल विधान करते हैं।

In the form of the Guru , Lord Kṛṣṇa awakens the consciousness of the living entities and brings about their true welfare.

दीक्षागुरु दिव्यज्ञान अर्थात् पूर्णवस्तु का ज्ञान प्रदान करते हैं।

The initiating spiritual master (*dīkṣā-guru*) imparts divine knowledge (*divya-jñāna*), that is, knowledge of the *pūrṇa-vastu* (the complete conscious entity).

कृष्ण ही मेरे नित्यप्रभु हैं, मैं कृष्ण का नित्यदास हूँ—यह दिव्यज्ञान अथवा सम्बन्धज्ञान

दीक्षागुरु ही प्रदान करते हैं।

Lord Kṛṣṇa is my eternal Lord, I am an eternal servant of Lord Kṛṣṇa—this divine knowledge (*divya-jñāna*) or knowledge of relationship (*sambandha-jñāna*) is imparted only by *dīkṣā-guru.*

शिक्षागुरु अनर्थ-निवृत्ति का उपाय बतलाते हैं और उसके पश्चात् शुद्धभजन की शिक्षा प्रदान करते हैं।

Śikṣā-guru tells the means to get rid of the unwanted habits and desires (*anarthas*) and after that imparts instructions as to how to render pure devotional service to Lord Kṛṣ

दीक्षागुरु ही अधिकांश स्थल पर शिक्षागुरु का कार्य करते हैं। बद्धजीव दीक्षागुरु और शिक्षागुरु का कार्य नहीं कर सकता।

In most cases, the *dīkṣā-guru* himself works as the *śikṣā-guru.* A conditioned soul (*baddha-jīva*) cannot work as the *dīkṣā-guru* or the *śikṣā-guru.*

दीक्षागुरु मंत्र और भजन-उपदेश प्रदान करते हैं।

Dīkṣā-guru bestows *mantra* and *bhajana-upadeśa* (instruction about how to perform devotional service).

शिक्षागुरु अनर्थ-निवृत्ति के पश्चात् भजन-शिक्षा प्रदान करते हैं।

Śikṣā-guru imparts *bhajana-śikṣā* (instructions about rendering devotional service) after *anartha-nivṛtti* (the stage in the progressive development of devotion to Lord Kṛṣṇa in which one is freed from unwanted desires and karmic reactions) is complete.

हृदयबिहारी अन्तर्यामी श्रीहरि ही चैत्त्यगुरु हैं।

Śrī Hari who sports in the heart as *antaryāmī* (indwelling Supersoul) is indeed *caitya-guru.*

कृष्ण-यदि कृपा करेन कोन भाग्यवाने।
गुरु-अन्तर्यामी रूपे शिखाये आपने॥

(श्रीचैतन्य चरितामृत मध्य 22/47)

kṛṣṇa yadi kṛpā kare kona bhāgyavāne
guru-antaryāmi-rūpe śikhāya āpane

(Śrī *Caitanya-caritāmṛta, Madhya-līlā,* 22.47)

अर्थात् श्रीकृष्ण यदि किसी भाग्यवान् जीव पर कृपा करते हैं, तब वे साक्षात् गुरु तथा अन्तर्यामी—इन दो रूपों में स्वयं उसे शिक्षा देते हैं।

Kṛṣṇa is situated in everyone's heart as the *caitya-guru*, the spiritual

master within. When He is kind to some fortunate conditioned soul, He personally gives him lessons so he can progress in devotional service, instructing the person as the Supersoul within and the spiritual master without.

Alternative: This means that if Lord Kṛṣṇa bestows His grace upon a fortunate soul, He Himself imparts knowledge to him in two forms: as the direct *guru* and as the indwelling Supersoul (*Antaryāmī*).

Alternative: That means, if Lord Kṛṣṇa showers His grace on a fortunate soul, He Himself, in the form of a direct Guru and the inner guide (Antaryāmī), teaches that soul.

अमृतप्रवाह भाष्य—पूर्वोक्त भक्ति-उन्मुखी-सुकृतिशाली व्यक्तिके निकट यदि कोई महात्मा पुरुष उपस्थित भी न हों, तथापि श्रीकृष्ण अन्तर्यामी-गुरुके रूपमें उसे शुद्धभक्तिकी शिक्षा प्रदान करते हैं।

***Amṛta-pravāha-bhāṣya*—**Even if a great devotee (*mahātmā*) is not present near a person who is endowed with *bhakti-unmukhī-sukṛti* (spiritual merits leading to *bhakti*), Śrī Kṛṣṇa, in the form of the *antaryāmī* Guru (inner guide), provides him with the knowledge of pure devotional service (*śuddha-bhakti*).

दीक्षागुरु और शिक्षागुरु जो विचार कहते हैं, चैत्यगुरु उसको धारण करने की योग्यता प्रदान करते हैं।

Caitya-guru provides the ability to the devotee to comprehend the thoughts about pure devotional service that are expressed by *dīkṣā-guru* and *śikṣā-guru.*

चैत्यगुरु दीक्षागुरु और शिक्षागुरु के उपदेश ग्रहण करने की शक्ति प्रदान करते हैं।

Caitya-guru provides the necessary spiritual strength to the devotee to understand the teachings of *dīkṣā-guru* and *śikṣā-guru.*

चैत्यगुरु की कृपा के बिना कोई भी दीक्षागुरु और शिक्षागुरु के विचार हृदयंगम नहीं कर सकता।

Without the grace of *caitya-guru*, no one can thoroughly understand the ideas and concepts of pure devotional service elucidated by *dīkṣā-guru* and *śikṣā-guru.*

चैत्यगुरु की कृपा अथवा सहायता के बिना महान्तगुरु की कृपा प्राप्त नहीं होती, चित्त का मालिन्य दूर नहीं होता, शिक्षा दृढ़ नहीं होती एवं श्रवणीय विषय कार्यकारी नहीं होता।

Without the grace or help of the *caitya-guru*, one cannot attain the

grace of the *mahānta-guru* (the *guru* in the form of the foremost living sādhu). Consequently, the impurities of the heart are not removed, the education does not become firm, and the devotional topics that are heard cannot be put into practice.

भगवान श्रीगौरांगदेव ही स्वयं दीक्षागुरु के रूप में दिव्यज्ञान और शुद्धभक्ति प्रदान करते हैं, स्वयं से अभिन्न शिक्षागुरुवर्ग को जगत में भेजकर उस भक्ति का संरक्षण करते हैं

Bhagavān Śrī Gaurānga-deva Himself imparts divine knowledge (*divya-jñāna*) and pure devotion (*śuddha-bhakti*) in the form of *dīkṣā-guru* and protects that devotion (*bhakti*) by sending *śikṣā-gurus* who are non- different from Him into the world.

Bhagavān Śrī Gaurānga-deva Himself imparts divine knowledge (*divya-jñāna*) and pure devotion (*śuddha-bhakti*) in the form of the *dīkṣā-guru* and protects that devotion (*bhakti*) by sending *śikṣā-gurus*, who are non-different from Him, into the world.

एवं स्वयं ही चैत्यगुरु होकर सेवोन्मुख जीव के हृदय में उस दीक्षा और शिक्षा को ग्रहण करने की शक्ति सञ्चारित करते हैं।

And by Himself becoming the *caitya-guru,* he transmits in the heart of the person who is inclined to render devotional service the power to receive and comprehend the true import of the initiation process (*dīkṣā*) and the devotional teachings (*śikṣā*).

Alternative: By personally assuming the role of the inner spiritual guide (*caitya-guru*), He instills within the heart of the person who is inclined to render devotional service the capacity to fully grasp and internalize the essence of initiation (*dīkṣā*) and devotional teachings (*śikṣā*).

प्रश्न—किसका संसार से उद्धार होगा? (Page 74)

Question—Who will be saved from this material world? (Page 74)

उत्तर—स्वयं को सौ प्रतिशत में-से सौ प्रतिशत समर्पित करने पर भगवान अवश्य उद्धार करेंगे ही।

Answer—If you dedicate yourself 100%, Bhagavān will certainly deliver you.

If the devotee dedicates himself one hundred percent, Bhagavān will certainly deliver him.

साधु-गुरु की सेवा और संग को अपना जीवन नहीं बनानेपर शत-प्रतिशत समर्पित करने की प्रवृत्ति जागृत नहीं होती।

If the service and company of *sādhus* (saintly persons) and *guru* (the spiritual master) is not made one's life, then the tendency to surrender 100% does not get awakened.

Alternative: Without making the service and company of *sādhus* (saintly persons) and *guru* (the spiritual master) one's life, the tendency to dedicate oneself completely does not awaken

पुनः पूर्ण समर्पित नहीं करने पर पूर्ण वस्तु भी नहीं मिलती।

Again, if one does not surrender completely, one cannot get the *pūrṇa-vastu* (the Supreme Spiritual Substance).

भगवान पूर्णवस्तु हैं, वे पूर्ण चाहते हैं। पूर्ण समर्पण करने पर ही पूर्ण की प्राप्ति होती है।

Bhagavān is *pūrṇa-vastu* (the Supreme Spiritual Substance), He wants complete dedication. One attains the *pūrṇa-vastu* (the Supreme Spiritual Substance) only by complete self-dedication.

जितने परिमाण में समर्पण करना, उतने ही परिमाण में प्राप्त करना।

One achieves the spiritual success to the degree one dedicates oneself to the devotional service of Bhagavān.

प्रश्न—कृष्णसेवक जीवों में कर्त्ताभिमान क्यों उत्पन्न होता है? (Page 75)

Question: Why does the pride of being the doer arise in those who serve Lord Kṛṣṇa? (Page 75)

उत्तर—जीव कर्त्ता अथवा भोक्ता नहीं है, यह सत्य है किन्तु कृष्णस्मृति के अभाव में जीवों में अहंकार धर्म प्रबल हो जाता है, तभी उनमें 'मैं कर्त्ता हूँ'—यह बुद्धि उदित होती है।

Answer: It is true that the living entity (*jīva*) is neither the doer (*kartā*) nor the enjoyer (*bhoktā*), but in the absence of remembrance of Lord Kṛṣṇa, the egoistic nature becomes dominant in the living entities, only then the thought 'I am the doer' arises in them.

जिस क्षण भगवत्सेवक जीव भगवत्सेवा का विचार भूल जायेगा, उसी क्षण माया उपस्थित होकर उसे ग्रास कर लेगी।

The moment a living entity who is a servant of Bhagavān forgets the thought of serving Him, at that very moment *māyā* will appear and engulf (or

devour) him.

सभी वस्तुओं में भगवत्सम्बन्ध नहीं देखने पर कर्त्तृत्वाभिमान के कारण जीव विपथगामी होगा और तभी वह कर्त्ता के रूप में सजकर जड़ की सेवा अर्थात् माया की सेवा करने के लिये व्यस्त होकर दुःख पायेगा।

If the living entity does not recognize the relationship between all things in the material world and Bhagavān, then, due to the pride of being the doer, he will go astray. He may then become engrossed in serving the dull material world or *māyā* (the illusory potency of Lord Kṛṣṇa), leading to suffering.

भक्त निरन्तर भगवान की सेवा करते हैं, उनमें सेवक-अभिमान प्रबल होता है किन्तु अभक्त जड़ की सेवा करके प्रभु के रूप में सजकर उद्वेग ही पाता है।

Devotees render service to Bhagavān ceaselessly and take great pride in being His servants. In contrast, a non-devotee experiences only anxiety and agitation by serving the dull material world and by assuming the role of the Lord and Master of the material world.

जिनका दिव्यज्ञान उदित नहीं हुआ है, वही प्रभु के रूप में सजकर सेवा ग्रहण करते हैं।

Only those, whose divine knowledge (*divya-jñāna*) has not awakened, dress up as the Lord and accept service from other gullible persons.

किन्तु कर्त्ता अथवा प्रभु नहीं होकर, जो भगवद्भक्तों की सेवा करते हैं, वे ही धन्य हैं।

But blessed and fortunate are those who serve the devotees of Bhagavān, without pretending to be the doer or the Lord of the material world.

प्रश्न—क्या बहुत दिनों तक बचे रहना अच्छा है? (Page 75)

Question—Is it good to survive for a long time? (Page 75)

उत्तर—हरिभजन करने पर बचे रहना अच्छा है किन्तु जो हरिभजन नहीं करते, उनका जीवित रहकर दौरात्म्य करने की अपेक्षा मृत्यु को प्राप्त हो जाना ही अच्छा है।

Answer—It is better to survive if one engages in *hari-bhajana* (devotional service of Lord Hari) but for those who do not engage in *hari-bhajana*, it is better to die rather than remaining alive and doing evil.

यदि मनुष्य और देवता श्रीहरि की उपासना नहीं करते, तो वे केवल जगत्जञ्जाल ही आनयन करते हैं।

If human beings and demigods do not worship Śrī Hari, then they will only attain worldly troubles.

जो कृष्ण देवताओं के भी उपास्य हैं, वे मनुष्यों के भी उपास्य हैं।

Lord Kṛṣṇa, who is the worshipful object for the demigods, is also the worshipful object for human beings.

अतः अन्य देवताओं की उपासना नहीं करके सर्वेश्वरेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की उपासना करने पर ही सभी की उपासना हो जाती है।

Therefore, if one worships Bhagavān Kṛṣṇa, the Supreme Lord of lords, instead of worshipping other demigods, one automatically receives the benefit of worshipping all.

प्रश्न—संसार में किस प्रकार रहना होगा? (Page 76)

Question—How should one live in the material world? (Page 76)

उत्तर—जिस प्रकार एक व्यक्ति को बाँधकर दण्ड देने पर, उसे बाध्य होकर स्वीकार करना पड़ता है, किन्तु दण्ड स्वीकार करना उसकी इच्छा नहीं है, उसी प्रकार इस संसार का गर्हण करते हुए इसे ग्रहण करना होगा, अन्यथा विपद और दुःख अनिवार्य हैं।

Answer—Just as a person who is bound and punished must accept it though it is not his desire, similarly, one must reproach (condemn) and accept this material world, otherwise, misfortunes and suffering are inevitable.

प्रश्न—हम कर्त्ता क्यों बन जाते हैं? (Page 76)

Question—Why do we become doers? (Page 76)

उत्तर—यह दुर्भाग्य का परिचय है। जीव तो ईश्वर नहीं है, जो वह कर्त्ता होगा?

Answer—This is an indication of our misfortune. The living entity is not the Supreme Lord, then how can it can be the doer?

कर्त्ता एकमात्र श्रीकृष्ण हैं। हम सभी उन श्रीकृष्ण के नित्य सेवक हैं।

The only doer is Śrī Kṛṣṇa. We all are eternal servants of that Śrī Kṛṣṇa.

किन्तु हम यह बात भूलकर गृह के कर्त्ता, मोहल्ले के स्वामी, ग्राम के नेता, देश के प्रभु अथवा जगत के ईश्वर होना चाहते हैं, ऐसा हमारा दुर्दैव है।

But it is our misfortune that we forget this and want to be the owner (*kartā*) of the house, the owner of the neighborhood, the leader of the village, the Lord of the country or the God (Supreme Controller) of the world.

Alternative: But, unfortunately, we forget this reality and aspire to become the head and bread winner of our household, the ruler of our neighborhood, the leader of our village, the sovereign of our nation, or even the God of the entire universe.

प्रश्न—मन्त्र किसे कहते हैं? (Page 76)

Question—What is called a *mantra*?

उत्तर—जो वस्तु विषय से, भोग्य-दर्शन से हमारा उद्धार कर सकती है, वही मंत्र है।

Answer—The thing which can liberate us from *vastu-viṣaya* (sense objects) and *bhogya-darśana* (propensity to see the material world as the place of one's unrestricted sense gratification) is the *mantra*.

मंत्र सिद्धि होने पर मनोधर्म से त्राण हो जाता है।

Upon achieving success in chanting the *mantra*, one gets relief from mental concoction (*mano-dharma*).

दम्भ का परित्याग नहीं करने पर गुरुसेवा, कृष्णसेवा कुछ नही होगी, स्वतंत्रता ही दम्भ है।

If one does not give up *dambha* (hypocrisy), then one will not be able to perform either service to Guru or service to Lord Kṛṣṇa; sense of independence (inability to remain under the guidance of the higher spiritual authority) itself is *dambha* (hypocrisy).

प्रश्न—अध:पतन क्यों होता है? (Page 76)

Question—Why does one fall down from the spiritual path? (Page 76)

उत्तर—यदि किसी प्रकार का दम्भ आकर उपस्थित हो, तो ऐसा होने पर श्रीगुरुपादपद्म के निर्देश पालन अथवा मनोऽभीष्ट सेवा तो कर ही नहीं पाऊँगा अपितु अध:पतन उपस्थित होगा।

Answer—If any type of *dambha* (hypocrisy) appears in my mind, then in

such a case not only will I not be able to follow the instructions of *Śrī Guru-pāda-padma* or do the desired service, but also I will face downfall.

मनुष्य के अध:पतन से पूर्व अश्रद्धा नामक एक वस्तु आती है।

Before the downfall of man comes a thing called disbelief.

Before a person falls down from the path of devotional service, he experiences one obstacle called 'diffidence, lack of faith or belief in Bhagavān, the saintly persons and the spiritual master' (*aśraddhā*).

यदि साधुगुरु के प्रति श्रद्धा हो, तभी मंगल है, अन्यथा सर्वनाश हो जायेगा, संस्पृहा वर्द्धित हो जायेगी।

If one has faith in the saintly persons (*sādhus*) and the spiritual master (*guru*), the one will receive auspiciousness in one's devotional journey, otherwise one will be totally ruined; and one's *saṁspṛhā* (desires) will increase.

मैं भगवान का दर्शन प्राप्त कर लूँगा, यह दुर्बुद्धि, दम्भ, मापाबुद्धि अथवा भोगबुद्धि है।

I will attain the vision of Bhagavān; this is foolishness or silliness (*dur-buddhi*), hypocrisy (*dambha*), propensity to measure Bhagavān by material dimensions thinking Him to be finite like oneself (*māpā-buddhi*) or tendency to seek sense gratification in this material world (*bhoga-buddhi*)

श्रीविग्रह मुझे देख रहें हैं, यही श्रीविग्रह-दर्शन है।

The Deity (*śrī-vigraha*) is looking at me, this is the true vision of Deity (*śrī-vigraha-darśana).*

इसीलिये कान देकर ठाकुरजी का दर्शन करना होता है।

We will be able to have vision (*darśana*) of Ṭhākurajī by dedicating our ears to the process of submissively hearing the *hari-kathā* from the lips of the spiritual master (*guru*) and the saintly persons (*sādhus*).

दैन्यार्त्ति लेकर, ठाकुरजी की कृपादृष्टि प्राप्ति के लिये ठाकुरजी के सुख के लिये ठाकुरजी के निकट जाना होता है, तभी मंगल होगा।

While experiencing the humility (*dainya*) and intense eagerness and anguish (*ārti*) in the heart, one will have to approach Ṭhākurajī in order to receive His merciful glance and to please Him. Then only one will experience auspiciousness in the life.

भोग और त्याग के प्रति श्रद्धा नहीं रहने का अर्थ है, भगवान के प्रति श्रद्धा।

Not having faith in sense gratification (*bhoga*) and renunciation (*tyāga*)

means having faith in Bhagavān.

श्रद्धा यदि विश्व और विश्ववासियों के प्रति हो, तो ऐसा होने पर वह भोग हुआ।

If one develops faith in the material world and in the mortal residents of this transitory material world, then it is likened to *bhoga* (sense gratification).

विषय मेरे भोग्य होंगे, यह बुद्धि ही दीक्षा अथवा दिव्यज्ञान का अभाव है।

When the thought arises in our heart that the sense objects are meant our enjoyment then it is indicative of the fact that we have not received true spiritual initiation (*dīkṣā*) or genuine divine knowledge (*divya-jñāna*).

मैं कौन हूँ, यदि यह विचार हृदय में उपस्थित नहीं हो, मेरे नित्य आराध्य के साथ यदि मेरा सम्बन्धज्ञान उदित नहीं हो, तो ऐसा होने पर श्रद्धा और शरणागति किस प्रकार के आयेगी?

If I do not ponder in the heart as to 'who am I', if I do not develop the knowledge of relationship (*sambandha-jñāna*) with my eternally worshipful object *(nitya-ārādhya),* then how will I develop faith (*śraddhā*) and mood of absolute surrender (*śaraṇāgati*)?

यदि श्रद्धा नहीं हो, तो ऐसा होने पर साधुदर्शन अथवा भगवद्दर्शन नहीं होता, ईर्ष्या, हिंसा अथवा समालोचना की प्रवृत्ति उपस्थित होती है।

If one has no faith (*śraddhā*), then in such a case, one cannot have a vision of a saintly person (*sādhus*) or Bhagavān and a tendency towards envy (*īrṣyā*), violence (*hiṁsā*) or criticism (*samālocanā*) arises.

प्रश्न—हमने आजतक जो शिक्षा प्राप्त की है, वह किस प्रकार दूरीभूत होगी? (Page 77)

Question—How can the atheistic education we have received so far be discarded from our hearts?

उत्तर—हमने बाल्यकाल से जो शिक्षा ग्रहण की है, वह सब जागतिक शिक्षा, सामयिक शिक्षा, संसार में रहने की शिक्षा है।

Answer—All the education we have received since childhood is worldly education, contemporary education, education meant for living and conducting oneself in the material world.

परमार्थ-शिक्षा के हृदय में स्थान प्राप्त करने पर ही इन सभी शिक्षाओं का तुच्छत्व सहज रूप में ही अनुभव होता है।

Only when the spiritual teachings find a place in one's heart, one can easily experience the worthlessness of all these teachings.

मैं भगवत्सेवक हूँ, मैं सेव्य नहीं हूँ, मैं सेवक हूँ, सेवा ही करूँगा, सेवा छोड़कर मैं और कुछ नहीं करूँगा, यदि यह सुबुद्धि उत्पन्न हो, तो ऐसा होने पर जो सभी दुर्बुद्धि, जड़बुद्धि अथवा शिक्षाएँ माता-पिता अथवा लौकिक आत्मीयस्वजनों के निकट प्राप्त की हैं, वह दूरीभूत हो सकती हैं।

I am a servant (*sevaka*) of Bhagavān; I am not the object of service (*sevya*); I am a servant; I will only serve; except service I will do nothing else; when this sort of good wisdom arises, then all the foolish, ignorant mentality (*durbuddhi*), materialistic conceptions (*jaḍa-buddhi*) or teachings received from parents or worldly relatives can go away.

ऐसा नहीं होने पर इस प्रकार की दुर्बुद्धि और पुष्ट हो जाती है।

If this does not happen then this type of foolish, ignorant mentality (*durbuddhi*) gets strengthened further.

भगवान ही एकमात्र भोक्ता और कर्त्ता हैं, यह बात भूलने पर ही संसार हो जायेगा।

We will be helplessly trapped in the *saṁsāra* (the cycle of repeated birth and death in this material existence) when we forget the fact that Bhagavān is the only enjoyer (*bhoktā*) and doer (*kartā*).

भगवत-सेवोन्मुख व्यक्तियों का ही संसार क्षय होता है और भगवद्विमुख व्यक्तियों का ही संसार वर्द्धित होता है।

Those who are inclined to render service to Bhagavān experience diminution in their attachment towards this material world and the persons who are averse to render devotional service to Bhagavān go deeper in the quagmire (marsh) of the material existence.

जिनका संसार बढ़ रहा है, उनकी भगवद्सेवा करने की इच्छा नहीं होती, भगवद्सेवा के विचारों को सुनना अच्छा नहीं लगता, भगवद्कथा सुनने का उन्हें समय नहीं मिलता।

Those whose attachment to the material world has increased do not have any desire to render any devotional service to Bhagavān, they do not like to listen to the discussion and idea about devotional service to Bhagavān, they do not get time to listen to the narrations of Bhagavān's nectarean pastimes.

यद्यपि वे कभी-कभी सुनने का अभिनय करते हैं किन्तु वह भी अपने अनुसार ही करते हैं।

Though sometimes they pretend to listen to *hari-kathā*, but they also do as per their own will.

उनके मन के अनुरूप कथा नहीं होने पर वे उन विचारों को छोड़ देते हैं।

If the *hari-kathā* doesn't suit their mind, they abandon those ideas.

हरिसेवा के विचारों को वे प्राधान्य नहीं देते, उनका विचार होता है—'Present. day-need' ही अधिक आवश्यक है।

They do not give any importance to the ideas of *hari-sevā* (devotional service of Lord Hari), their view is—'Present day need' is more important.

'भगवान क्या वस्तु हैं?' यदि यह जानना हो तो भगवान के भक्तों के निकट जाना होगा। इसके अतिरिक्त भगवान को जानने का अन्य कोई उपाय नहीं है।

If you want an answer to the question "What type of *vastu* (entity) is Bhagavān?", you will have to approach the devotees of Bhagavān. Apart from this, there is no other way to know Bhagavān.

प्रश्न—क्या प्रतिमा-दर्शन ही भगवद्दर्शन हैं?

Question: Is seeing the *pratimā* (statue) the same as seeing Bhagavān?

उत्तर—भगवान में देह-देही का भेद नहीं है।

Answer—*Śāstra* has established that the distinction between *deha* (the body) and *dehī* (the possessor of the body) is also false in the case of the *sac-cid-ānanda śrī vigraha* of Bhagavān.

मेरे हृदयदेवता मुझ पर कृपा करने के लिये, मुझे सेवा का सुयोग प्रदान करने के लिये विश्व में अवतीर्ण हुए हैं।

The worshipful Deity of my heart (*hṛdaya-devatā*) has mercifully appeared in this material world from the spiritual sky in order to bestow upon the great good fortune to render loving devotional service to Him.

परतत्त्व के प्रति अर्चाबुद्धि, प्रतिमाबुद्धि अथवा शिलाबुद्धि रहने पर परतत्त्वबुद्धि, ईष्टदेवबुद्धि अथवा भगवद्दर्शन नहीं हुआ।

If we regard the *para-tattva* (the Supreme Reality) to be *arcā* (idol), *pratimā* (statue) *or śilā* (stone), then it means that we have neither understood the *para-tattva* (the Supreme Reality) and worshipful Deity (*iṣṭa-deva*) nor seen Bhagavān.

अर्चा-विग्रह को साक्षात् भगवान के रूप में नहीं देखने पर यदि अर्चा-विग्रह के रूप में ही देखता रहूँ, तो मंगल नहीं हुआ।

If I continue to see *arcā-vigraha* (the worshipable Deity of Bhagavān) only as *arcā-vigraha*, instead of seeing it as Bhagavān Himself, then I have not attained auspiciousness in true sense.

भगवान श्रीगौरांगदेव, श्रीजगन्नाथदेव का श्यामसुन्दर-मुरलीवदन के रूप में दर्शन करते थे, वह अर्चा-विग्रह अथवा प्रतिमा का दर्शन नहीं करते थे अपितु साक्षात् परतत्त्व दर्शन करते थे।

Bhagavān Śrī Gaurāṅgadeva saw Śrī Jagannāthdeva as Śyāmasundara-Muralīvadana (the attractive dark form of Lord Kṛṣṇa playing flute in Vṛndāvana forest), he did not see the *arcā-vigraha* or the Deity but He saw the *para-tattva* (Absolute Reality) Himself.

श्रीमन्महाप्रभु का विचार था—**'प्रतिमा नहे तुमि साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन।'** अर्थात् आप प्रतिमा नहीं अपितु साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन हैं।

Śrīman Mahāprabhu's thought was—**'*pratimā nahe tumi sākṣāt brajendra-nandana*'.** That is, you are not an idol but *sākṣāt* Brajendra-nandana (directly son of Śrī Nanda Mahārāja).

प्रश्न—क्या व्यर्थकथा अथवा ग्राम्यकथा बोलना अमंगल जनक है? (Page 78)

Question: Is it inauspicious to engage in *vyartha-kathā* (idle talk or village gossip) or *grāmya-kathā* (worldly or mundane talks)? (Page 78)

उत्तर—निश्चय ही।

Answer—Certainly.

भोग्यप्रसंग अथवा ग्राम्यप्रसंग से संसार होता है और सेव्यप्रसंग, भगवत्प्रसंग से कृष्णेन्द्रियतर्पण अथवा भक्ति होती है।

One is entangled in the material existence characterized by the cycle of repeated birth and death if one discusses topics about sense gratification

(*bhogya-prasaṅga*) or mundane topics (*grāmya-prasaṅga*). If one discusses topics about Bhagavān, then that bestows devotional service (bhakti) to Lord Kṛṣṇa or brings about kṛṣṇa-indriya-tarpaṇa (the satisfaction of the senses of Lord Kṛṣṇa).

हरिप्रसंग नहीं होने पर ही भोग्यप्रसंग हो जायेगा।

If we do not discuss the topics about Lord Hari (*hari-prasaṅga*), then we will discuss the topics of sense gratification (*bhogya-prasaṅga*).

जगत के लोग सब समय व्यर्थकथा-ग्राम्यकथा बोलते हैं और बोलेंगे।

The people living in the material world engage in and will continue to engage in idle talks or worldly talks at all times.

Alternative: Inhabitants of the material world are perpetually engaged in, and will continue to engage in, idle or mundane conversation.

उन समस्त कथाओं के प्रति उदासीन रहकर हरिनाम करना होगा।

One will have to chant *hari-nāma* (the holy name of Lord Hari) while remaining indifferent towards all these mundane and worldly discussions.

Alternative: One must continuously chant the holy name of Lord Hari while remaining detached from these worldly and trivial conversations.

अन्यथा हमें भी उनमें से एकजन बनना पड़ेगा।

Otherwise we too will have to become one of them.

Alternative: Otherwise, we too will succumb to such worldly distractions

इसीलिये श्रीमन्महाप्रभु ने कहा है—**'ग्राम्यकथा ना शुनिबे, ग्राम्यवार्त्ता ना कहिबे'** (अर्थात् ग्राम्यकथा नहीं सुनना और ग्राम्यकथा नहीं कहना।)

That is why Śrīman Mahāprabhu has said—***'grāmya-kathā nā śunibe, grāmya-vārtā nā kahibe'*** (meaning one must never listen to or engage in mundane or worldly conversation).

Alternative: Therefore, Śrīman Mahāprabhu has instructed, —***'grāmya-kathā nā śunibe, grāmya-vārtā nā kahibe'*** **(Meaning:** One should neither listen to nor engage in worldly conversation.)

प्रश्न—क्या सभी को कीर्त्तन करना होगा?

Question—Does everyone have to do *kīrtana*?

Question—Is it necessary for everyone to engage in loud glorification of the name, form, qualities and pastimes of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa (*kīrtana)*?

उत्तर—कीर्त्तन सभी को करना होगा।

Answer—Everyone must perform loud glorification of the name, form, qualities and pastimes of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa (*kīrtana).*

हरिनामकीर्त्तन और हरिकथा-कीर्त्तन ही जीव का नित्यधर्म है।

Hari-nāma-kīrtana (Loud glorification of the holy names of Lord Hari) and *hari-kathā-kīrtana* (loud glorification of the pastimes of Lord Hari) are indeed *nitya-dharma* (eternal occupation*)* of every living entity.

श्रुत विषय का कीर्त्तन करके पहले स्वयं को वह समस्त विचार सुनाने होंगे।

First one must cause oneself to listen to all the spiritual topics heard from the lotus lips of the saintly persons (*sādhus*) and the spiritual master (*guru*) by repeating them aloud.

दूसरे लोग उन्हें सुनते हैं, तो सुने उससे आपत्ति नहीं है किन्तु स्वयं आचरण करने की विशेष आवश्यकता है।

Others may listen to your *kīrtana* (loud glorification) if they wish, and there is no harm in that. However, it is especially important for you to engage in *kīrtana* yourself and to listen to it yourself.

Alternative: Others may listen to your *kīrtana* (loud glorification) if they wish; it is harmless. However, personal engagement in *kīrtana* (loud glorification) and its attentive listening are essential.

प्रश्न—क्या सभी भक्त ही श्रीमन्दिर में जाकर भोग देते हैं? (Page 79)

Question—Do all devotees go to the temple of Lord Kṛṣṇa and offer food to His Deity? (Page 79)

उत्तर—सद्गुरु के चरणाश्रित कनिष्ठाधिकारी भक्त गुरु के आनुगत्य में श्रीविग्रह के निकट जाकर नैवेद्य देकर मंत्र पढ़ते हुए ठाकुरजी को भोग देते हैं।

Answer—The neophyte devotees (*kaniṣṭha-adhikārī-bhaktas*) approach the Deity of Lord Kṛṣṇa under the guidance of the spiritual master and offers *naivedya* (cooked food-grains) to Ṭhākurajī (Śrī Kṛṣṇa) while reciting appropriate *mantras.*

मुक्तपुरुष भी मन्दिर में प्रीतिपूर्वक भोग देते हैं।

Even the liberated personalities (*mukta-puruṣa*) also lovingly make an offering of cooked food-grains in the temple of Lord Hari.

मध्यमभक्त सब समय अर्चा-विग्रह के निकट नैवेद्य नहीं ले जाकर कभी-कभी पृथक भाव से स्वयं ही अपने हृदयदेवता को भोग देते हैं एवं बाद में उस प्रसाद को ग्रहण करते हैं

Madhyama-bhaktas (devotees in the intermediate stage of bhakti or devotional development) do not always take offerings of food to the Deity, but sometimes make an offering to the Deity in their heart separately and then honor that sanctified food (*prasāda*).

और महाभागवतों के विचारानुसार उनके निकट जो भी वस्तु आती है, वह सभी भगवान ने ग्रहण करके उनके निकट अपना उच्छिष्ट भेजा है।

And as per the opinion of *mahā-bhāgavatas* (the topmost devotees who have attained perfection in their devotion unto Śrī Kṛṣṇa), whatever food-stuffs and eatables come near them, Bhagavān has already accepted them all and sent His remanants to them.

वह प्रत्येक वस्तु में भगवद्भाव दर्शन करते हैं।

They perceives the divine presence in every object in the world and see it as as meant for Bhagavān's enjoyment.

यह बात सुनकर कोई यह नहीं समझे कि महाभागवत श्रीमन्दिर में भोग नहीं देते।

Hearing this statement, no one should think that *mahā-bhāgavata Vaiṣṇavas* do not offer cooked food-stuffs (*bhoga)* to Lord Kṛṣṇa in His holy temple *(śrī-mandira).*

श्रीराघव पण्डित, श्रीगौरीदास पण्डित, श्रीरघुनन्दन ठाकुर, श्रीमाधवेन्द्र पुरी आदि सभी महाभागवतों ने ठाकुरजी को श्रीमन्दिर में प्रीतिपूर्वक भोग दिया है।

Śrī Rāghava Paṇḍita, Śrī Gaurī-dāsa Paṇḍita, Śrī Raghunandana Ṭhākura, Śrī Mādhavendra Purī and other *mahā-bhāgavatas* have lovingly offered *bhoga* in *śrī-mandira* (the holy temple of Lord Kṛṣṇa).

अर्चा-विग्रह मुझ अनर्थयुक्त के साथ बातचीत नहीं करते किन्तु भक्त के साथ बातचीत करते हैं, उनके सामने प्रसाद ग्रहण करते हैं।

I am full of unwanted habits and desires (*anarthas*). The Deity of Bhagavān (*arcā-vigraha*) does not talk to me; but talks to the devotee and accepts *prasāda* in his presence.

प्रश्न—क्या भगवद्दर्शन इन नेत्रों से होता है? (Page 80)

Question—Can one see Bhagavān through these eyes? (Page 80)

उत्तर—जगन्नाथ और जगत एक नहीं हैं।

Answer: Jagannātha (Lord of the universe) and the material world are not the same.

दिव्यज्ञान अथवा दिव्यचक्षु प्राप्त नहीं होने पर जगन्नाथ दर्शन नहीं होता।

Unless one does not acquire divine knowledge (*divya-jñāna*) or divine eyes (*divya-cakṣu*), one cannot have *darśana* (vision or audience) of Jagannātha.

मैं अब नेत्रों से देख नहीं पाता किन्तु चश्मा लगाकर देखता हूँ।

I cannot see with my eyes now, but I can see with the help of glasses.

उसी प्रकार इन नेत्रो से जगन्नाथ दर्शन नहीं होगा।

Similarly, you will not be able to see Jagannātha with these eyes.

गुरुप्रदत्त ज्ञानचक्षु अथवा भक्तिनेत्रों से ही, गुरुकृपा की सहायता से ही जगन्नाथ दर्शन होता है।

One can see Lord Jagannātha only by the causeless mercy of the spiritual master and with the help of the eyes of knowledge (*jñāna-cakṣu*) or the eyes of devotion (*bhakti-netra*) bestowed by the the spiritual master.

कान देकर दिव्यज्ञान प्राप्त करके जगन्नाथ दर्शन करना होगा।

One can see Lord Jagannātha by acquiring the divine knowledge (*divya-jñāna*) by dedicating one's ears to the *hari-kathā* spoken the spiritual master and the saintly persons.

Alternative: One can behold Lord Jagannātha after acquiring divine knowledge (*divya-jñāna*) through dedicated listening to the *hari-kathā* imparted by the spiritual master and saintly persons.

प्रश्न—क्या सेवा अपने हाथों से ही करना उचित है? (Page 80)

Question—Is it right to do render devotional service with one's own hands? (Page 80)

उत्तर—पुरोहित अथवा प्रतिनिधि के द्वारा भगवत्सेवा कार्य नही होता। इसीलिये सभी के लिये प्रीतिपूर्वक अपने हाथों से भगवत्सेवा करना कर्त्तव्य है।

Answer—One cannot properly accomplish the activity of rendering devotional service to Bhagavān (*bhagavat-sevā*) by delegating it to a priest (*purohita*) or a representative (*pratinidhi*). It is therefore the duty of each individual to serve Bhagavān lovingly with one's own hands.

प्रश्न—किस वस्तु के प्रति आसक्ति होने पर मंगल होगा? (Page 80)

Question: If one has attachment towards which thing, will one be blessed? (Page 80)

उत्तर—जगत के प्रति, जगतवासियों के प्रति आसक्ति बन्धन और दुःख का कारण होती है।

Answer—Attachment towards the material world and its inhabitants is the cause of bondage and suffering.

इसीलिये आसक्ति की direction घुमाने की आवश्यकता है।

That is why there is a need to change the direction of one's attachment.

The Great Attractor के साथ बन्धन होना प्रयोजनीय है, तभी मंगल होगा।

It is desirable to have a bond with 'The Great Attractor', only then will there be happiness.

प्रश्न—क्या गुरु कृपा के बिना कुछ नहीं होगा? (Page 80)

Question—Will nothing happen without the grace of the spiritual master?

(Page 80)

उत्तर—नहीं। मैं अज्ञानान्ध हूँ, गुरु के अतिरिक्त मुझे और कौन पथ दिखलायेगा?

Answer—No. I am blinded by ignorance, who else will show me the path except the spiritual master (Guru)?

कौन मुझे ज्ञान देगा? गुरुकृपा से ही सब प्राप्त होगा।

Who will give me knowledge? I will attain everything only by the causeless mercy of the Guru (spiritual master).

हम लघु हैं, हमारे एकमात्र आश्रय हैं—श्रीगुरुदेव।

We are small and insignificant (laghu), our only shelter is—Śrī Gurudeva.

जो सब प्रकार से सर्वक्षण भगवान की सेवा करते हैं, वही श्रीगुरुदेव हैं।

The one who serves Bhagavān in all ways and at all times is indeed Śrī Gurudeva.

श्रीगुरुदेव आश्रयजातीय कृष्ण हैं। उन्हीं श्रीगुरु के प्रति ईश्वरबुद्धि होने पर ही हमारा मंगल होगा।

Śrī Gurudeva is *āśraya-jātīya* Kṛṣṇa (Kṛṣṇa who is the shelter or receptacle of love of Godhead). We will attain auspiciousness only if develop *īśvara-buddhi* to Śrī Guru. In other words, our lives will be auspicious only when we regard the spiritual master to be as worshipable as the Supreme Lord Śrī Kṛṣṇa.

प्रश्न—क्या स्त्रीसंग करना अनुचित है? (Page 81)

Question—Is it inappropriate to have sexual intercourse with a woman? (Page 81)

उत्तर—निश्चय ही। स्त्री-सम्बन्धी पाप आचरण नहीं करना चाहिये।

Answer—Of course. One should not commit sins related to women.

वैरागीगण तो स्त्रीसंग कदापि नहीं करेंगे एवं गृहस्थ होकर भी अत्यन्त कामप्रवृत्ति उचित नहीं है।

Mendicants or persons in the renounced order of life will never have sexual relations with women, and even being a householder, having excessive sexual inclination is not appropriate.

जो कृष्ण को भूलकर संसार करेंगे और छलधर्म ग्रहण करेंगे, वे गृहव्रत हैं।

Those who forget Lord Kṛṣṇa, live in the material world, and adopt

deceptive religions are *gṛha-vrata* persons (those whose sole aim is to live comfortably with the body in the material world, having vowed to indulge their senses and fulfill their desires).

गृहस्थ-अभिमान करके अन्य विचार आने पर वह अधर्म होगा।

If one is proud of his household and has other thoughts then it would be a sin.

श्रीमन्महाप्रभु ने कहा है—

Śrīman Mahāprabhu has said—

असत्संग त्याग—एई वैष्णव-आचार।
स्त्री संगी—एक असाधु, कृष्णाभक्त आर॥

asat-saṅga-tyāga,—ei vaiṣṇava-ācāra
'strī-saṅgī'—eka asādhu, 'kṛṣṇābhakta' āra

अनुवाद—वैष्णवों को सदा ही असत्संग का त्याग करना चाहिये, यही वैष्णव-आचार है। असत्संग दो प्रकार का है—'स्त्री-संगी' अर्थात् स्त्री के प्रति आसक्त व्यक्ति—एक प्रकार का असाधु है और 'श्रीकृष्ण-अभक्त' व्यक्ति—दूसरे प्रकार का असाधु है।

Translation—Devotees should always renounce bad association; this is the principle of Vaiṣṇava conduct. There are two types of bad association: one is the person who is attached to women (*strī-saṅgī*)—such a person is considered one type of dishonest miscreant (*asādhu*); the other is the person who is averse to the devotional service Lord Śrī Kṛṣṇa (*śrī-kṛṣṇa-abhakta*)—such a person is another type of dishonest miscreant.

प्रश्न—भगवद्पादपद्म में हमारी मति क्यों नहीं होती? (Page 81)

Question: Why are we not absorbed in meditation on the lotus feet of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa *(bhagavad-pāda-padma)*? (Page 81)

उत्तर—भाग्य और सुसंस्कार नहीं होने पर भगवान के प्रति मति किस प्रकार होगी?

Answer: How will one be absorbed in mediation on Bhagavān if one does not have good fortune (*bhāgya*) and good past impressions (*su-saṁskāra*)?

क्या सभी को व्यवसाय, नौकरी अथवा अंक अच्छा लगता है?

Does everybody like business, job or numbers?

जिनके कर्मसंस्कार होते हैं, उनकी कर्म में रुचि होती है जिनके भक्तिसंस्कार होते हैं, उनकी भक्ति में रुचि होती है।

Those who have *karma-saṁskāra* (past impressions of fruitive activities), have interest in *karma* (reward-seeking activities), those who have *bhakti-saṁskāra* (past impressions of devotional service), have interest in *bhakti* (devotional service).

भक्ति में रुचि नहीं होना ही दुर्भाग्य का परिचय है।

Not having interest in devotional service (*bhakti*) is a sign of misfortune.

भगवान सेव्य वस्तु, अतीन्द्रिय वस्तु हैं। वे जड़-इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं हैं।

Bhagavān is the object to service and worship (*sevya-vastu*) and the object beyond the senses (*atīndriya-vastu*). He cannot be perceived by the dull physical senses.

भगवान सेवोन्मुख इन्द्रियों में प्रकाशित होते हैं।

Bhagavān manifests Himself within the senses which are inclined to render devotional service.

आरोहपन्था के द्वारा कोई उनकी कृपा प्राप्त नहीं कर सकता।

No one can obtain His grace by following the ascending or inductive process of acquiring the knowledge (*āroha-panthā*).

प्रश्न—हमारे भीतर (भगवान के प्रति) उन्मुखता क्यों नहीं आती?

Question—Why do we not develop an inclination to render devotional service towards Bhagavān?

उत्तर—एक तो संस्कार नहीं होने के कारण और दूसरा उसके लिये यत्न नहीं होने के कारण।

Answer—Firstly, due to lack of *saṁskāras* (good impressions from previous births) and secondly, due to lack of effort (endeavor) for it.

इसीलिये सद्वैद्य की आवश्यकता है। सत्संग करने पर उन्मुखता आती है।

That is why there is a need for a *sad-vaidya* (good doctor). One becomes favorably inclined to render devotional service by doing engaging in *sat-saṅga* (association with the saintly persons).

जिस प्रकार veterinary surgeon (पशुचिकित्सक) पशु के मुख को कौशल के द्वारा फाँक करके औषधि का प्रयोग करता है, श्रीगुरुपादपद्म अथवा साधुवैद्य भी उसी प्रकार हमारे ऊपर कृपा करते हैं।

Just as a veterinary surgeon skillfully opens the mouth of an animal and applies medicine, *Śrī Guru-pāda-padma* (the spiritual master whose two divine feet are comparable to blooming fragrant lotuses) or *sādhu-vaidya* (the saintly persons who act as doctors curing patients suffering from the material disease of aversion to devotional service to Lord Kṛṣṇa) also shower their blessings on us in the same way.

हमारी अनिच्छा होने पर भी वे हमारे मुख में बलपूर्वक भक्तिरस डाल देते हैं।

Despite our unwillingness, they forcibly pour the sweet mellows of devotional service (*bhakti-rasa*) into our mouths.

श्रीगुरुदेव का यह कार्य परम दया का परिचय है।

This act of Śrī Gurudeva is an example of supreme mercy.

उनकी दया की सीमा नहीं है।

His mercy has no limits.

कृष्णप्रेम प्रदान करना ही श्रीगुरुदेव की दया है।

It is the mercy of Śrī Gurudeva to bestow Kṛṣṇa's love (*kṛṣṇa-prema*).

हम अपना मंगल नहीं चाहेंगे किन्तु श्रीमन्महाप्रभु बलपूर्वक हमें हमारे नित्यमंगल की कथा सुना रहे हैं।

We do not desire our our auspiciousness but Śrīman Mahāprabhu is forcibly giving us the instructions as how we can to attain of eternal auspiciousness.

मानवजाति के ऊपर श्रीचैतन्यदेव ने किस अपार करुणा का प्रदर्शन किया है, श्रीकृष्ण से अवगत कराकर अचेतन विश्व को किस प्रकार चेतन किया है यह एकबार विश्ववासियों की चिन्ता का विषय हो, ऐसा होने पर ही मंगल होगा।

Śrī Caitanyadeva has displayed an unfathomable compassion upon the humankind. He has made the insentient world sentient by making it familiar with the merciful nature of Śrī Kṛṣṇa. The residents of this material world will attain auspiciousness if they meditate at least once on this unfathomable compassion of Śrī Caitanyadeva.

*****प्रश्न—हमारे भीतर भगवान को पुकारने की प्रवृत्ति क्यों नहीं होती? संसारकूप में ही पड़े रहने की इच्छा क्यों होती है? (Page 82)**

Question—Why do we not have the tendency to call out to Bhagavān? Why do we wish to remain stuck in the blind well of worldly existence?

उत्तर—मनुष्य चेतन है।

Answer—Man is conscious.

उसमें ग्रहण करने अथवा नहीं करने की स्वतंत्रता है।

He has the freedom to accept or not accept.

ग्रहण करने की चित्तवृत्ति नहीं होने पर, वह वन में रोदन करने के समान होगा।

If one does not have the attitude to accept, it will be like crying in the forest.

हृदय के साथ भगवान को पुकारने पर अवश्य ही उनकी कृपा होगी।

If you call Bhagavān with all your heart, you will surely receive His blessings.

चेतन Initiative ले सकता है। अचेतन में स्वतंत्रता नहीं होती।

The conscious can take initiative. The unconscious has no freedom.

चेतन और अचेतन के स्वामी ईश्वर हैं। चेतन के पास स्वतंत्रता रूपी एक रत्न है।

Īśvara is the master of the conscious and the unconscious. The conscious has a gem in the form of freedom.

किन्तु भगवान सर्वतंत्रस्वतंत्र हैं, जीव की स्वतंत्रता उनकी इच्छापरतंत्र है।

But God is completely independent; the freedom of the living beings is dependent on His will.

जीव स्वतंत्रता का सद्व्यवहार भी कर सकता है और असद्व्यवहार भी कर सकता है।

A living being can use its freedom well or badly.

यदि ईश्वर चेतन को बाध्य कर दें, तो चेतन को नष्ट करना हो जायेगा।

If God forces the conscious, then the conscious will have to be destroyed.

तभी चेतन की स्वतंत्रता के ऊपर हस्तक्षेप नहीं करके भगवान चेतन की स्वाभाविक वृत्ति को उन्मेषित करना चाहते हैं।

That is why, without interfering with the freedom of the conscious, God wants to bring out the natural instincts of the conscious.

जीवात्मा सृष्ट वस्तु नहीं है, वह नित्य सनातन वस्तु है। भगवान साधु-गुरु-शास्त्र के रूप में अवतीर्ण होकर जीव को शुद्ध चेतन धर्म में उद्बुद्ध करने का यत्न करते हैं।

The soul is not a created thing, it is an eternal thing. Bhagavān descends in the form of a saint (*sādhu*), *guru* and scriptures and tries to enlighten the soul in pure conscious religion.

यह जगत हमारा नित्यवास स्थान नहीं है। शास्त्र कहते हैं—

This world is not our permanent place of residence. The scriptures say—

साधुशास्त्र कृपाय यदि कृष्णोन्मुख हय।
सेई जीव निस्तरे माया ताहारे छाड़य॥
मायामुग्ध जीवेर नाहि कृष्णस्मृति ज्ञान।
जीवेर कृपाय कैल कृष्ण वेदपुराण॥
शास्त्र-गुरु-आत्मरूपे आपनारे जानान।
कृष्णमोर प्रभु, भ्राता-जीवेर हय ज्ञान॥
नित्यबद्ध—कृष्ण हैते नित्यबहिर्मुख।
नित्यसंसार, भुञ्जे नरकादिदुःख॥
सेई दोषे माया-पिशाची दण्ड करे तारे।
आध्यात्मिक तापत्रय तारे जारि' मारे॥
काम-क्रोधेर दास हञा तार लाथि खाय।
भ्रमिते-भ्रमिते यदि साधुवैद्य पाय॥
ताँर उपदेश-मंत्रे पिशाची पलाय।
कृष्णभक्ति पाय, तबे कृष्ण निकट जाय॥
कृष्णनित्यदास जीव ताहा भूलि गेल।
एई दोषे माया तार गलाय बाँधिल॥
ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।
माया जाल छुटे, पाय कृष्णेर चरण॥

sādhu-śāstra kṛpāya yadi kṛṣṇonmukha haya
seī jīva nistare māyā tāhāre chāṛaya
māyā-mugdha jīvera nāhi kṛṣṇa-smṛti jñāna
jīvera kṛpāya kaila kṛṣṇa veda-purāṇa
śāstra-guru-ātmarūpe āpanāre jānāna
kṛṣṇa-mora prabhu, bhrātā—jīvera haya jñāna
nitya-baddha—kṛṣṇa haite nitya-bahir-mukha
nitya-saṁsāra, bhuñje narakādi-duḥkha
seī doṣe māyā-piśācī daṇḍa kare tāre
ādhyātmika tāpa-traya tāre jāri' māre
kāma-krodhera dāsa hañā tāra lāthi khāya
bhramite-bhramite yadi sādhu-vaidya pāya

tānra upadeśa-mantre piśācī palāya
kṛṣṇa-bhakti pāya, tabe kṛṣṇa nikaṭa jāya
kṛṣṇa-nitya-dāsa jīva tāhā bhūli gela
eī doṣe māyā tāra galāya bāndhila
tāte kṛṣṇa bhaje, kare gurura sevana
māyā jāla chuṭe, pāya kṛṣṇera caraṇa

अर्थात् साधु और शास्त्र की कृपा से यदि कोई जीव कृष्ण के प्रति उन्मुख होता है, तो माया उसे छोड़ देती है और तब वह जीव भवसागर को अनायास ही पार कर लेता है।

That is to say, by the grace of saints (*sādhus*) and scriptures (*śāstras*), if any soul becomes oriented towards Lord Kṛṣṇa, then *māyā* leaves him and then that soul crosses the ocean of existence without any effort.

मायामुग्ध जीवों को कृष्ण की स्मृति नहीं होती क्योंकि वे कृष्ण से विमुख होते हैं, ऐसे विमुख जीवों पर कृपा करने के लिये श्रीकृष्ण ने वेद और पुराण आदि शास्त्रों को प्रकाशित किया है।

The creatures who are enchanted by *māyā* (illusion) do not remember Lord Kṛṣṇa because they are turned away from Lord Kṛṣṇa. To show mercy on such turned away creatures, Lord Lord Kṛṣṇa revealed scriptures like *Vedas*, *Purāṇas* etc.

जब कृष्ण शास्त्र, गुरु और चैत्यगुरु के रूप में जीव के निकट अपना तत्त्व प्रकाशित करते हैं, तब जीव को यह ज्ञान होता है कि कृष्ण ही मेरे प्रभु-बन्धु हैं।

When Lord Kṛṣṇa reveals His essence (*tattva*) to the soul in the form of scripture, Guru and *caitya-guru*, then the soul gets the knowledge that Lord Kṛṣṇa is his Lord and friend.

नित्य संसारी जीव अनादिकाल से कृष्ण से बहिर्मुख होकर संसार में आकर नरकादि दुःखों का भोग कर रहे हैं, कृष्ण से बहिर्मुख होने के कारण माया इन जीवों को आध्यात्मिकादि तीन तापों से निरन्तर पीड़ित करती रहती है।

Since time immemorial, the living beings of this world have turned away from Lord Kṛṣṇa and have come into this world and are experiencing the sorrows of hell etc. Due to being turned away from Lord Kṛṣṇa, *māyā* continuously torments these beings with the three types of sufferings such as *ādhyātmika-kleśa.*

काम-क्रोध का दास होकर जीव निरन्तर उनकी लात खाता है, इस प्रकार भ्रमण करते-करते भाग्यक्रम से जब किसी जीव का साधु रूपी वैद्य से साक्षात्कार होता है, तो

उनके उपदेश मंत्र से माया पिशाची उस जीव को छोड़कर भाग जाती है, तब वह जीव कृष्णभक्ति प्राप्त करके कृष्ण के निकट गमन करता है।

Being a slave of lust and anger, the soul is constantly kicked by them. Thus, while wandering, by chance, when a soul meets a doctor in the form of a saint, then due to his teachings, the witch *māyā* leaves that soul and runs away. Then, that soul, after attaining Lord Kṛṣṇa's devotion, goes near Him.

जीव कृष्ण का नित्य दास है किन्तु कृष्ण-दासत्व की विस्मृति रूपी दोष के कारण माया ने उसका गला बाँध दिया।

The soul is the eternal servant of Lord Kṛṣṇa, but due to the defect of forgetting his servanthood with Lord Kṛṣṇa, *māyā* has bound him by the throat.

किन्तु कृष्ण का भजन और गुरुदेव की सेवा करते-करते, जीव इस मायाजाल से छूटकर कृष्ण के चरणों को प्राप्त कर लेता है। (श्रीचैतन्यचरितामृत)

But by worshipping Lord Kṛṣṇa and serving the Gurudeva, the soul is freed from this web of illusion and attains the feet of Lord Kṛṣṇa. (*Śrī Caitanya-caritāmṛta*)

प्रश्न—हम इस जगत में क्यों आये?

उत्तर—कृष्ण को भूलकर हम इस जगत में पतित हुए हैं। यह planet suited for our purpose है।

Question—Why did we come into this world?

Answer—We have fallen into this world by forgetting Krishna. This planet is suited for our purpose.

सूर्य के साथ proper adjustment नहीं होने पर यदि उसके निकट जायें, तो जलकर मरना होगा।

If you do not have proper adjustment with the Sun and go near it, you will burn to death.

मैं अणुचित् जीवात्मा हूँ, मुझे अपनी ओर आकर्षित करने के लिये, जो विभूचित् भगवान कृपा करके सार्द्धत्रिहस्त परिमित (साढ़े तीन हाथ का) अवयव (शरीर) धारण करते हैं, उनके साथ adjust होने का विचार होने पर ही मंगल है अन्यथा मैं Initiative लेने की इच्छाकर, जो ब्रह्म होने का विचार ग्रहण करता हूँ, उससे कदापि मंगल नहीं हो सकता।

I am an infinitesimal soul; to attract me towards Himself, the glorious God by his grace assumes a limited body of three and a half hands. It is auspicious only if I think of adjusting with him; otherwise, if I desire to take

the initiative and adopt the thought of becoming the Brahma, then it can never be auspicious.

भगवान को disturb नहीं करके यदि properly adjust हो सकूँ, अनुकूल अनुशीलन कर सकूँ, तब उनकी कृपा प्राप्ति सम्भव होगी।

If I can adjust properly without disturbing Bhagavān and can do favorable practice, then it will be possible to get His grace.

कर्मी, ज्ञानी आदि में intellectualism प्रबल होता है।

Intellectualism is strong among fruitive workers (*karmīs*), and *jñānīs* (persons who pursues the path of *jñāna*, or knowledge, directed toward impersonal liberation).

स्वयं को प्रधानता देने पर कर्म-ज्ञानवाद होगा और भगवान को प्रधानता देने पर भक्ति होगी।

Giving priority to oneself will lead to *karma-jñāna-vād*a (pursuit of pious action *karma* leading to material gain and pursuit of the path of *jñāna*, or knowledge, directed toward impersonal liberation) and giving priority to Bhagavān will lead to *bhakti* – devotional service.

शास्त्र कहते हैं—

The scriptures say—

कृष्ण भूलि सेई जीव अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसारादि दुःख॥

kṛṣṇa bhūli seī jīva anādi bahir-mukha
ataeva māyā tāre deya saṁsārādi duḥkha

अर्थात् जीव कृष्ण को भूलकर अनादि काल से उनसे बहिर्मुख है, इसी दोष के कारण माया उसे संसारादि दुःख-क्लेश देती है।

That is, the soul has forgotten Lord Kṛṣṇa and has turned away from Him since time immemorial. Due to this flaw, *māyā* gives him worldly sorrows and pains.

प्रश्न—भक्ति के विचारों को सभी लोग क्यों नहीं समझ पाते?

Question—Why don't everyone understand the ideas of *bhakti*?

उत्तर—Extra ordinary (असाधारण) नहीं होने पर भक्ति के विचार किस प्रकार समझ आयेंगे?

Answer—How can the ideas of devotion be understood if one is not

extraordinary?

Ordinary merit (साधारण योग्यता) भुक्ति-मुक्ति के विचारों को लेकर ही व्यस्त है।

Ordinary merit is busy with the thoughts of enjoyment (*bhukti*) and liberation (*mukti*).

आचारवान् होना आवश्यक है।

It is essential to have good conduct.

स्वयं आचरण करने पर ही दूसरों को आचार में प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

Only by behaving properly ourselves can we inspire others to follow good conduct.

प्रश्न—प्रत्यक्ष, परोक्ष, अपरोक्ष और अधोक्षज किसे कहते हैं? (Page 85)

Question—What is called *pratyakṣa, parokṣa, aparokṣa* and *adhokṣaja?* (Page 85)

उत्तर—मनुष्य अपनी इन्द्रियों के द्वारा जो देखता है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं।

Answer—What a human being sees through his senses is called direct perception (*pratyakṣa*).

Alternative: The gross phenomena seen by the human being by his knowledge acquiring senses is knowledge as direct perception (*pratyakṣa*).

दूसरों की इन्द्रियों के द्वारा जिसे प्रत्यक्ष करता है, जिसमें प्रत्यय-स्थापन किया जाता है, उसे परोक्ष कहते हैं।

That which is perceived through the senses of others, in which a conception is made, is called indirect (*parokṣa*).

Alternative: When one perceives (or receives the ocular evidence of) the gross phenomena through the senses of others and develops firm conviction in that perception, then such knowledge is called indirect knowledge (*parokṣa-jñāna*).

जो प्रत्यक्ष भी नहीं है और परोक्ष भी नहीं है, जो Tabula rasa, Absolute ब्रह्म आदि शब्दों के द्वारा उद्दिष्ट हुआ है, उसे अपरोक्ष कहते हैं।

That which is neither direct (*pratyakṣa*) nor indirect (*parokṣa*), that which is indicated by the words Tabula rasa, Absolute Brahma, etc., is called *aparokṣa.*

निर्विशेषवाद ही अपरोक्ष विचार की शेष सीमा है।

Impersonalism (*nirviśeṣa-vāda*) is the final limit of indirect thought

(*aparokṣa-vicāra*).

अपरोक्षवादी जिसे Absolute कहते हैं, हमारे Absolute वैसे नहीं हैं।

What the *aparokṣa-vādī* call Absolute, our Absolute is not like that.

हमारे Absolute वंशीवदन श्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन हैं।

Our Absolute is Lord Kṛṣṇa who holds flute to His lips (Vaṁśī-vadana), who has a beautiful dark complexion (Śyāmasundara) and who is the son of Śrī Nanda Mahārāja (Vrajendra-nandana).

श्रीमद्भागवत में अधोक्षज शब्द के द्वारा उसी Absolute को ही निर्दिष्ट किया गया है।

In *Śrīmad-Bhāgavatam* the same Absolute has been referred to by the word *adhokṣaja*.

प्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्ष का अतिक्रम करके अधोक्षज भूमिका में अधोक्षज की सेवा करनी होगी, वे ही सेव्यवस्तु हैं।

Transcending the direct (*pratyakṣa*), indirect (*parokṣa*) and *aparokṣa*, one will have to serve the *adhokṣaja* in the *adhokṣaja* role, He is the object to be served.

अधोक्षज सर्वतन्त्रस्वतंत्र स्वतःकर्त्तृत्वधर्मविशिष्ट हैं।

Adhokṣaja is *sarvatantra-svatantra* and *svataḥ-karttṛtva-dharma-viśiṣṭa*.

अधोक्षज Initiative ले सकते हैं।

Adhokṣaja can take Initiative.

अधोक्षज के साथ बनियागिरि नहीं चलेगी, छल नहीं चलेगा क्योंकि वे सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ हैं।

Businessmanship and deceit will not work with *Adhokṣaja*, because He is s*arva-antaryāmī* and omniscient.

वे मनुष्य के range of vision में नहीं आते।

He does not come within the range of human vision.

प्रश्न—क्या कर्म और ज्ञान आत्मधर्म हैं? (Page 86) (Reviewed)

Question—Are *karma* and *jñāna ātma-dharma* (the natural devotional inclination of the soul)? (Page 86) (Reviewed)

उत्तर—नहीं! ज्ञान और कर्म, अनात्मधर्म हैं।

Answer—No. *Karma* and *jñāna* are *anātma-dharma.* In other words, *Karma* and *jñāna* are not the natural devotional inclination of the soul.

कर्म में नश्वर फलभोगवाद होता है और

The process of fruitive activities (*karma*) teaches us endeavor very hard for achieving mundane and temporary goals such as elevation to the heavenly planets.

ज्ञान में त्याग की बाहादुरी लेकर केवलाद्वैतवाद के आश्रय में स्वगत-सजातीय-विजातीय भेद रहित होकर निर्भेदब्रह्म के अनुसन्धान की चेष्टा में आत्मविनाश वरण करना होगा।

In the process of mental speculation (*jñāna*), one simply boasts of dry renunciation and under shelter of *kevala-advaita-vāda* (exclusive monism or *māyāvāda*), endeavors to search Śrī Kṛṣṇa's impersonal aspect of the non-differentiated divine light (*nirbheda-brahma*) which is devoid of without *svagata-bheda* (differences within itself), *sajātīya-bheda* (differences from others of the same kind or category) and *vijātīya-bheda* (differences from others of different kinds or categories). Thus one accepts the path of total self-destruction and commits spiritual suicide. [Note: *Māyāvāda* is the impersonal philosophy first propounded by Śaṅkarācārya, which proposes the unqualified oneness of God and the living entities (who are both conceived of as being ultimately formless) and the nonreality of manifest nature; the philosophy that everything is one and that the Absolute Truth is not a person.]

भोगी और त्यागी both are mistaken and misguided।

The *bhogī* (sense gratifier) and *tyāgī* (a renunciate or ascetic; one who gives up the life of material sense gratification) both are mistaken and misguided.

कर्म और ज्ञान दोनों ही ठग हैं।

Both *karma* and *jñāna* are thugs (persons who steal people's wealth by cheating).

उनके हाथों से परित्राण पाना आवश्यक है।

It is necessary to seek protection from their hands.

Too much affinity (अत्यधिक आसक्ति) होने पर अधिक depression होगा, इसीलिये अनासक्त भाव से संसार करने की आवश्यकता है।

If there is too much affinity, one will experience a greater degree of depression, that is why there is a need to live in the material world with detachment.

विचारसंगत process neglect करने पर मरना होगा।

Neglecting the thoughtful and logical process will lead to one's death.

प्रश्न—परा-शान्ति की प्राप्ति का उपाय क्या है? (Page 86) (Reviewed)

Question—What is the way to attain ultimate peace? (Page 86) (Reviewed)

उत्तर—जीव देह में आत्मबुद्धि करके जड़ के साथ सम्बन्धविशिष्ट होकर नानाप्रकार से दुःख यन्त्रणा भोग करता है।

Answer—

The living entity, by considering its body to be the self (soul) and by becoming associated with the dull matter, experiences various kinds of pain and suffering.

Alternative: The living entity starts regarding one's material body to be the soul and establishes a false sense of relationship with the material world. This misconception becomes the cause of various types of torments for the living entity.

इससे उद्धार पाने के लिये कोई कहता है कि मन ही सुख-दुःख का भोक्ता है।

To get deliverance from this misconception, some say that it is the mind only that experiences happiness and sorrow.

अतः चित्तवृत्ति का निरोध करके प्रकृति में लीन होकर निर्वाण प्राप्त करने पर और कोई दुःख नहीं रहेगा।

Therefore, by controlling the thoughts of the mind (*citta-vṛtti,* the tendency of the heart; disposition) and merging into nature and attaining *nirvāṇa* (final emancipation from matter and re-union with the Supreme Spirit), there will be no more sorrow.

Alternative: Therefore they suggest that one should control the thoughts of the mind (*citta-vṛtti,* the tendency of the heart; disposition) and merge into nature and thus attain *nirvāṇa* (final emancipation from matter and re-union with the Supreme Spirit). Thus there will be no more sorrow for the living entity.

पुनः कोई कहता है कि मैं ब्रह्म हूँ, वर्त्तमान में माया के साथ विजड़ित होकर मुझे यह दुःख-कष्ट भोग करना पड़ रहा है, पुनः माया से मुक्त होकर ब्रह्मानुभूति होने पर ही मुझे ज्ञान प्राप्त होगा, तब और दुःख-कष्ट नहीं रहेंगे।

Again, someone declares that I am impersonal Brahman. At present,

being bound by *māyā* (illusory potency of Lord Kṛṣṇa), I am having to undergo these pains and sufferings. Only when I become free from *māyā* again and attain the realization of the impersonal Brahman, will I attain impersonal knowledge and then there will be no more pain and suffering.

किन्तु इनमें से कोई भी पराशन्ति का सन्धान नहीं दे पाता।

But none of these methods can provide the ultimate peace.

कारण, प्रथम मत में जिस पथ को ग्रहण करने के विषय में कहा गया है, उससे केवल मन की क्रियामात्र स्तब्ध होगी, किन्तु उससे जीव को कोई बोध नहीं रहता, चेतन का कोई विचार नहीं रहेगा।

Because, the path of *nirvāṇa* which has been mentioned in the first opinion will only stop (paralyze or benumb) the functioning of the mind. However then the living entity will becime devoid of all the awareness or knowledge and it will forget that he is the conscious minute entity or the sentient spirit soul.

द्वितीय मत में यद्यपि चेतन का अस्तित्व स्वीकार किया गया है, तथापि उससे परिणाम में ज्ञाता-ज्ञेय की पृथक सत्ता स्वीकृत नहीं होने के कारण ज्ञान की सम्भावना नहीं है।

In the second view, although the existence of consciousness (sentience) has been accepted, yet there is no possibility of knowledge as a result of it, because the separate existence of the knower (*jñātā*) and the known (*jñeya*, object of knowledge) is not accepted in the end (conclusion).

Alternative: The second opinion accepts the existence of consciousness. However it does not accept the separate existence of knower (*jñātā*) and the object of knowledge (*jñeya*). Therefore one cannot attain transcendental knowledge by following this path.

जड़ के साथ सम्बन्धरहित होने का प्रयोजन पूर्ण होने पर भी पूर्णचेतन भगवान के साथ सम्बन्धविशिष्ट नहीं होने पर अणुचेतन जीव को पराशान्ति की प्राप्ति नहीं होती।

Even after the purpose (aim) of being free from association with the dull matter is fulfilled, if the tiny conscious being (atomic sentient being, *aṇu-cetana jīva*) does not have a special relationship with Bhagavān who is the embodiment of complete consciousness (*pūrṇa-cetana* Bhagavān), then he cannot attain ultimate peace.

Alternative: The living entity is an atomic spark of consciousness. By following the methods of attaining the realization of the impersonal Brahman, its intermediate goal of becoming free from the connection with the dull matter may be fulfilled, however unless it develops a transcendental loving relationship with Bhagavān who is the embodiment of complete consciousness, it cannot attain the transcendental peace.

भगवद्भक्त के साथ रहकर उनकी कृपा से दिव्यज्ञान अथवा सम्बन्धज्ञान प्राप्त होता है।

By staying with a devotee of Bhagavān, one attains divine knowledge (*divya-jñāna*) or *sambandha-jñāna* (knowledge regarding *sambandha-tattva*, the mutual relationship between the Lord, the living entities, and the material energy) by his grace.

Alternative: When one associates with a pure devotee of Bhagavān, one receives his mercy. As a result of that causeless mercy, one attains transcendental knowledge (*divya-jñāna*) or *sambandha-jñāna* (knowledge of one's relationship with the Lord).

साधुसंग, नामकीर्त्तन, भागवतश्रवण, श्रीमूर्त्ति की श्रद्धापूर्वक सेवा के द्वारा जीव का मंगल होता है।

The association of saintly persons (*sādhu-saṅga*), loud glorification of holy names (*nāma-kīrtana*), listening to *Śrīmad-Bhāgavatam* (*bhāgavata-śravaṇa*) and serving the Deity of Lord Kṛṣṇa with faith brings auspiciousness to the soul.

Alternative: The living entity attains auspiciousness when it engages in the following important limbs of devotional service — (1) associating with saintly persons dedicated to the loving devotional service of Lord Kṛṣṇa (*sādhu-saṅga*), (2) loud glorification of holy names (*nāma-kīrtana*), (3) listening to *Śrīmad-Bhāgavatam* (*bhāgavata-śravaṇa*) and (4) serving the Deity of Lord Kṛṣṇa

with faith.

हम भगवान के सेवक हैं, उनकी सेवा ही हमारा कृत्य है।

We are servants of Bhagavān, serving Him is our only duty.

इसीलिये हमें भगवान की सेवा की ओर अग्रसर होना होगा, भगवद्सेवा को ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य करना होगा, तभी वास्तविक शान्ति प्राप्त होगी, अन्यथा नहीं।

That is why we must advance towards the process of rendering loving devotional service to Bhagavān. We must make devotional service to Bhagavān the sole aim of our life. Only then will we attain true (genuine) peace, otherwise not.

प्रश्न—क्या करने पर मंगल होगा? (Page 87) (Reviewed)

Question: What should one do in order to attain good fortune (auspiciousness)? (Page 87) (Reviewed)

उत्तर—परम श्रद्धा के साथ गुरुसेवा करने पर निश्चय ही मंगल होगा।

Answer: One will surely attain auspiciousness if one serves the Guru (spiritual master) with utmost faith (*śraddhā*).

दुःखमय जगत में केवल कष्ट पाने के लिये ही मनुष्य की समस्त चेष्टाएँ हैं।

In this world full of misery all the efforts and activities of a human being are meant only to receive grief and tribulations.

भगवद्सेवा विमुख के लिये माया का यही विधान है।

This is the fate ordained by *māyā* (illusory potency of Lord Kṛṣṇa) for those who are averse to the service of Bhagavān.

जो जगत सौख्य में व्यस्त होते हैं, वे अपना अमंगल वरण करते हैं।

Those who are busy in worldly happiness, choose misfortune (inauspiciousness) for themselves.

सेवा-विमुखता क्रम में मुनष्य में यह विचार आते हैं।

These thoughts arise in a person when he becomes averse to devotional service of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa.

अपने सुख के लिये यत्न करना ही दुःख का कारण है, यह विचार मनुष्य समझ नहीं पाता।

Man is unable to understand the idea that striving for one's own happiness is the root cause of sorrow.

चौदह भुवन अमंगल की भूमिका हैं।

The fourteen planetary systems in the universe are the land of inauspiciousness.

दुर्भाग्यवशतः वर्त्तमान में—'मैं कर्त्ता हूँ', हमारे भीतर यह अभिमान प्रबल है।

Unfortunately at present this false ego of 'I am the doer' is strong within us.

Alternative: Unfortunately, we currently possess the strong false ego that 'I am the doer'.

इस विचार से किस प्रकार निस्तार होगा।

How will one get rid of this thought (misconception)? [How can we be delivered from this thought (misconception)?]

गुरुपादपद्म का आश्रय करके भगवद्सेवा करनी होगी।

One must serve Bhagavān by taking refuge in the lotus feet of the the spiritual master (Guru-pāda-padma).

हम रिपुओं के वशीभूत होकर विश्वदर्शन में व्यस्त हो रहे हैं, इससे उद्धार का उपाय है—गुरुपादपद्म की सेवा।

Being controlled by enemies, we are getting engrossed in *viśva-darśana* (seeing the material world as the object of our sense gratification). The way to become from this gross misconception is to render service to the lotus feet of the spiritual master (Śrī Guru-pāda-padma).

जो विश्वदर्शन करते हैं, वे भोगी हैं।

Those who engage in *viśva-darśana* are *bhogī* (sense gratifiers).

प्रत्येक इन्द्रिय हृषीकेश की सेवा में नियुक्त नहीं होने पर बुभुक्षा (भोग की इच्छा) द्वारा अमंगल ही वरण करना होगा।

If each of our working and knowledge-acquiring senses including mind is not engaged in the service of Hṛṣīkeśa — the master of all senses, then our hunger or hankering for sense gratification will inevitably make us accept or choose misfortune (inauspiciousness).

'कृष्ण किस प्रकार संतुष्ट होंगे?' वह विचार भोगी नहीं करता।

The indulgent person (sense gratifier, bhogī) does not consider, "How will Lord Kṛṣṇa be satisfied?"

विश्वदर्शनकारी भोगी अपने सुखभोग और आत्मीयस्वजनों के सन्तोष विधान को लेकर ही व्यस्त रहते हैं।

The *viśva-darśana-kārī bhogīs* (sense gratifiers who view the material world as the object of their enjoyment) remain busy seeking their own pleasure and arranging for the satisfaction of their friends and relatives.

भोगी समदर्शी नहीं, विषमदर्शी, विश्वदर्शी अथवा भोग्यदर्शन में व्यस्त हैं।

The *bhogīs* (hedonists, sense gratifiers) are not the persons endowed with the equal vision (*sama-darśī*). In other words, *bhogīs* do not see everyone's conditioned life equally. [*Sama-darśīs* are those persons who see that Bhagavān's *taṭastha-śakti* manifests as the *jīvātmā* (living entity) with a specific *svarūpa* in every material body.]

Rather *bhogīs* are *viṣama-darśī* (hetero-sighted). *Viṣama-darśīs* are those persons who do not realize the eternal existence of Bhagavān or *para-brahma,* in every living entity. The *bhogīs* are *viśva-darśī* (who see the material world as the object of their sense gratification). The *bhogīs* are busy in *bhogya-darśana* (the hedonistic philosophy of seeing every living entity and material object in this world to be object of their sense gratification).

हम वर्त्तमान में सेवाविमुख होकर इस जगत में आये हैं।

At present, we have come into this material world due to an attitude of aversion to rendering devotional service to Lord Kṛṣṇa.

सभी मेरा इन्द्रिय तर्पण करें, हमारा यह विचार प्रबल है।

Everyone should satisfy my senses, this thought of mine is strong.

कोई यदि मेरे इन्द्रियतर्पण में व्याघात करता है तो वह व्यक्ति कोई ठीक नहीं है।

If somebody interferes with my sense gratification then that person is not a good person.

इस दुर्गति के हाथ से उद्धार पाने का उपाय है—श्रीगुरुपादपद्म का आश्रय।

The only way to be saved from this misfortune and degraded condition is to take shelter at the lotus feet of the spiritual master.

प्रश्न—अर्चन और कीर्त्तन में क्या वैशिष्ट्य है? (Page 88) (Reviewed)

Question—What is the difference between Deity worship (*arcana*) and *kīrtana* (loud glorification of the holy name, form, qualities and pastimes of Lord Kṛṣṇa)? (Page 88) (Reviewed)

उत्तर—अर्चन के द्वारा अपना मंगल होता है और कीर्त्तन के द्वारा अपने साथ दूसरों का भी मंगल होता है।

Answer—Through Deity worship (*arcana*) one gets welfare (auspiciousness) for oneself and through *kīrtana* (loud glorification of the holy name, form, qualities and pastimes of Lord Kṛṣṇa) one brings welfare (auspiciousness) not only to oneself but also to others.

Edited: Answer—Through Deity worship (*arcana*), one achieves personal welfare (auspiciousness). In contrast, through *kīrtana* (loud glorification of the holy names, forms, qualities and pastimes of Lord Kṛṣṇa), one not only attains personal welfare but also brings auspiciousness to others.

अर्चन स्वयं किया जाता उसे दूसरे नहीं देखते किन्तु कीर्त्तन दूसरों के कानों में भी गूँजता है,

Deity worship is done by oneself, others do not see it, but the *kīrtana* (the loud glorification of Lord Kṛṣṇa's names, form, qualities and pastimes) reverberates in the ears of others as well.

जिसे श्रवण करके श्रीगुरुदेव अथवा भक्तगण हमारी त्रुटियों का संशोधन कर देते हैं, जिससे कीर्त्तनकारी का शीघ्र ही मंगल होता है।

After listening to the *kīrtana* (loud glorification of the holy name, form, qualities and pastimes of Śrī Kṛṣṇa) performed by us, Śrī Gurudeva or the devotees correct our mistakes, due to which we, the performers of *kīrtana,* attain the auspiciousness quickly.

इसके फलस्वरूप कीर्त्तन प्राणमय, आचारमय और शुद्ध हो जाता है।

As a result, *kīrtana* (loud glorification) becomes full of life, appropriate conduct or manners and pure.

प्रश्न—शुद्धनाम कब होता है? (Page 88) (Reviewed)

Question—When can one chant pure name (*śuddha-nāma*)? (Page 88) (Reviewed)

उत्तर—जड़ की चिन्ता रहने पर शुद्धनाम नहीं होगा।

Answer: If one meditates on the dull matter, then one cannot chant the pure name of Lord Kṛṣṇa (*śuddha-nāma*).

सेवोन्मुख नहीं होने पर, कृष्णोन्मुखी नहीं होने पर, कृष्णनाम किस प्रकार होगा?

If one is not devoted to the service of Bhagavān (*sevonmukha*), if one is

not intent on or inclined to render service to Lord Kṛṣṇa (*kṛṣṇonmukhī*), then how will one be able to chant the holy name of Lord Kṛṣṇa (*kṛṣṇa-nāma*)?

जो भोगी हैं, जो कपटता करते हैं, जो शठता करते हैं, उनके मुख में हरिनाम नहीं होता।

Those who are sense gratifiers (*bhogī*), who engage in hypocrisy (*kapaṭatā*) and depravity or pretension (*śaṭhatā*) cannot chant the holy name of Lord Hari (*hari-nāma*) by their mouths.

नाम और नामी अभिन्न हैं, जिनमें यह विचार नहीं है, उनके नाम में बाधा होगी।

Those who do not think that *nāma* (the holy name) and *nāmī* (the Supreme Personality of Godhead who is addressed by the holy name) are non-different will face severe obstacles in their chanting of the holy name.

सेवोन्मुख होने पर नाम आरम्भ होता है। नाम साक्षात् भगवान हैं—यह स्मृतिपथ पर नहीं होने पर नाम किस प्रकार होगा?

One can successfully begin to chant the holy name of Lord Kṛṣṇa when one is devoted to the service of Lord Kṛṣṇa. If one cannot remember all the time that the fact that 'the holy name is directly Bhagavān Himself', then how can one chant the holy name of Lord Kṛṣṇa?

बहिर्जगत का चिन्तास्त्रोत प्रबल रहने पर वैकुण्ठनाम नहीं होता।

If one always strongly thinks about or intensely mediates upon the external material world (*bahir-jagata*), then one cannot chant *vaikuṇṭha-nāma* (the holy name of Lord Kṛṣṇa who is also known as Vaikuṇṭha).

मन चिन्मय अथवा शुद्ध नहीं होने पर हरिनाम नहीं होगा।

One will not be able to chant *hari-nāma* (the holy name of Lord Kṛṣṇa), if one's mind is not *cinmaya* (transcendental, composed of pure cognition) or *śuddha* (pure).

जिनका विश्वदर्शन, भोग्यदर्शन ध्वंस हो गया है, उनका ही निरन्तर हरिनाम होता है।

Only those whose *viśva-darśana* (propensity to see the material world as the object of our sense gratification) and *bhogya-darśana* (propensity to see the sense objects of the material world as meant for our gratification) have been eradicated can chant *hari-nāma* continuously.

वासनाओं के दास होने के कारण ही हम इतने दुःखी हैं।

We are so unhappy because we are slaves to our desires.

अनित्य प्रार्थना अथवा कामनाएँ प्रबल होने पर कामनाओं के दास होकर भूत-प्रेत

बनना पड़ेगा।

When prayers for temporary objects of sense gratification or material desires become strong, then one will become a slave to material desires and become a ghost, the inhabitant of *Preta-loka* or an evil spirit after death.

Edited: When prayers for temporary objects of sense gratification or material desires become strong, one becomes enslaved by material desires and may end up as a ghost, an inhabitant of *Preta-loka*, or an evil spirit after death.

गुरु-कृष्ण की सेवा के द्वारा चित्त निर्मल होने पर ही उस शुद्धचित्त में शुद्धनाम उदित होंगे अन्यथा नामापराध होगा।

Only when the mind is purified by serving Guru and Lord Kṛṣṇa, the pure name will arise in that pure mind, otherwise it will be a *nāmāparādha* (offense to the holy name).

Alternative: When one's consciousness is totally purified by rendering menial service to the spiritual master and Lord Kṛṣṇa, the holy name of Lord Kṛṣṇa will manifest automatically in such a purified heart. Otherwise if one's consciousness is not yet pure, one's chanting will remain always on the stage of *nāma-aparādha* (offense to the holy name).

प्रश्न—भगवान हमसे क्या चाहते हैं? (Page 89) (Reviewed) *

Question—What does Bhagavān want from us? (Page 89) (Reviewed) *

Question—What does Bhagavān expect from us? (Page 89) (Reviewed) *

उत्तर—भगवान और कुछ नहीं चाहते, Submission (शरणागति) मात्र चाहते हैं।

Answer—Bhagavān does not want anything else, He only wants submission or surrender (*śaraṇāgati*).

Note: The six kinds of surrender are: (1) to accept that which is favorable to *kṛṣṇa-bhakti*; (2) to reject that which is unfavorable; (3) to have the strong faith "Bhagavān will protect me"; (4) to have dependence, thinking "Bhagavān will take care of me"; (5) to be fully self-surrendered (*ātma-samarpaṇa*); and (6) to be humble.

भगवद्-अनुशीलन करने की आवश्यकता है।

There is a need to perform *bhagavad-anuśīlana.* In other words, one must constantly perform devotional service to Bhagavān by all endeavors of the body, mind and words and also by *bhāva* (moods) exclusively for Kṛṣṇa,.

सामर्थ्य नहीं रहने पर जो उनका अनुशीलन करते हैं, हमें उनकी सहायता की आवश्यकता है अन्यथा विपरीत दिशा में गति होगी।

If we do not have the strength to perform *bhagavad-anuśīlana,* then we will need the help of those who perform *bhagavad-anuśīlana,* otherwise we will move in the opposite direction of our goal.

Edited: If we lack the strength to engage in *bhagavad-anuśīlana* ourselves, we must seek the help of those who do, otherwise, we risk moving away from our goal.

जड़ जगत की सेवा करने पर कृष्ण सेवा नहीं होगी, हमें यह विचार स्मरण रखने की आवश्यकता है।

We need to remember the cardinal principle that serving the material world will not be serving Lord Kṛṣṇa.

जीवन्मृत अथवा बहिर्मुख व्यक्ति भगवान की सेवा का सौभाग्य नहीं प्राप्त कर सकते।

Jīvan-mṛta-vyakti (A person who is devoid of Kṛṣṇa consciousness despite being physically alive) or *bahirmukha-vyakti* (one who is bereft of a relationship with Bhagavān Kṛṣṇa or a materialistic person inimical to Śrī Kṛṣṇa and averse to spiritual life) cannot have the good fortune of serving Him.

जिनमें प्राण हैं, उन्हें ही सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

Only those who have life (*prāṇa*) can receive the great good fortune of serving Bhagavān.

सेवोन्मुख व्यक्ति ही जीवन्त है।

Only a person who is inclined to render service to Bhagavān (*sevonmukha-vyakti*) is truly alive.

शोक-मोह-भय पग-पग पर हैं, इन तीनों दस्युओं के हाथ से उद्धार का एकमात्र उपाय अधोक्षज की भक्ति है।

In this material world, grief (*śoka*), attachment (*moha*) and fear (*bhaya*) are there at every step; the only way to be saved from these three bandits is the devotion to Adhokṣaja (Lord Kṛṣṇa who is beyond the cognition and perception of the material senses).

श्रीमूर्त्ति अधोक्षज वस्तु हैं।

The Deity of Lord Śrī Kṛṣṇa (*śrī-mūrti*) is *adhokṣaja-vastu* (transcendental object beyond the cognition and perception of the material senses).

वे लकड़ी, मिट्टी, पत्थर नहीं हैं।

It is not an idol made from wood, clay, or stone.

प्रश्न—अनर्थ क्या हैं? (Page 89) (Reviewed) *

Question—What are *anarthas* (unwanted desires, activities or habits which are likened to weeds hindering one's advancement in *bhakti*)? (Page 89) (Reviewed) *

उत्तर—अर्थ है—वास्तव वस्तु भगवान श्रीहरि और उनके विपरीत हुआ अनर्थ।

uttara—artha hai—vāstava vastu bhagavāna śrīhari aura unake viparīta huā anartha.

Answer—The *artha* (valuable possession) is—Bhagavān Śrī Hari who is the *vāstava-vastu* (any really existing or abiding substance; that which is grounded in transcendence) and anything that is opposed to Bhagavān Śrī Hari is unwanted, useless and devoid of value (*anartha*).

माया ही अनर्थ है।

Māyā (The illusory potency of Lord Kṛṣṇa) itself is *anartha.*

वह वस्तु प्रतीत होने पर भी वस्तु नहीं हैं।

Even though it appears to be a *vastu* (an object, thing, or substance; that which has existence), it is not a *vastu.*

अनर्थ अर्थ की प्राप्ति में बाधा है, उसका अतिक्रम करना होगा।

Anarthas (unwanted habits) pose a great obstacle in attaining the ultimate goal of human life (*artha*) — the love of Godhead. One must endeavor to cross this great obstacle.

प्रश्न—क्या श्रीगुरुपादपद्म ब्रह्मवस्तु अथवा बृहद्वस्तु हैं? (Page 89) (Reviewed) *

Question—Is Śrī Guru-pāda-padma *brahma-vastu* (the embodiment of the Absolute Truth) or *bṛhad-vastu* (the substance, which is greater than the greatest, the one and only infinite substance)? (Page 89) (Reviewed) *

उत्तर—हम लघु से भी लघु, उसकी अपेक्षा भी लघु हैं और श्रीगुरुपादपद्म बृहद् से भी बृहद्, उसकी अपेक्षा भी बृहद् हैं।

Answer—We are smaller than the smallest, and even smaller than that, while Śrī Guru-pāda-padma is greater than the greatest, and even greater than that.

श्रीगुरुपादपद्म बृहद् की सेवा करते हैं, बृहद् वस्तु उनकी सेवा के वशीभूत रहती है।

Śrī Guru-pāda-padma serves Para-brahma Śrī Kṛṣṇa-candra, who is the one and only infinite substance (*bṛhad-vastu*), and *bṛhad-vastu* remains subservient to his service.

जो मधुर रति से कृष्णभजन करते हैं, वे गुरुपादपद्म को अभिन्नवार्षभानवी के रूप में ही जानते हैं।

jo madhura rati se kṛṣṇabhajana karate haiṃ, ve gurupādapadma ko abhinnavārṣabhānavī ke rūpa meṃ hī jānate haiṃ.

Those who worship Lord Kṛṣṇa in *madhura-rati* (the mellow of conjugal love), know Guru-pāda-padma to be *abhinna-vārṣabhānavī-rūpa* (the non-different manifestation of Śrīmatī Rādhārāṇī, the daughter of Śrī Vṛṣabhānu Mahārāja).

जो वात्सल्य रस के प्रार्थी हैं, वे श्रीगुरुपादपद्म को नन्द-यशोदा के प्रकाश विशेष के रूप में जानते हैं।

jo vātsalya rasa ke prārthī haiṃ, ve śrīgurupādapadma ko nanda-yaśodā ke prakāśa viśeṣa ke rūpa meṃ jānate haiṃ.

Those who are desirous of serving Bhagavān in the mellow of parental affection (*vātsalya-rasa*) will know Śrī Guru-pāda-padma to be the manifestation of Nanda—the eternal father of Śrī Kṛṣṇa and Yaśodā—the eternal mother of Śrī Kṛṣṇa.

जो सख्यरस के प्रार्थी हैं, वे गुरुदेव को श्रीदाम-सुदाम आदि कृष्णसखा और उनके प्रभु नित्यानन्द के प्रकाश विशेष के रूप में जानते हैं।

jo sakhyarasa ke prārthī haiṃ, ve gurudeva ko śrīdāma-sudāma ādi kṛṣṇasakhā aura unake prabhu nityānanda ke prakāśa viśeṣa ke rūpa meṃ jānate haiṃ.

Those, who are desirous to serve Lord Kṛṣṇa in the mellow of friendship (*sakhya-rasa*), see their spiritual master as the friends of Lord Kṛṣṇa such as Śrīdāma and Sudāma, and as the expansion (*prakāśa*) of Lord Nityānanda Balarāma, who is the Lord of all the cowherd boys.

जो दास्यरस के सेवक हैं, वे गुरुदेव को रक्तक, पत्रक, चित्रकादि नन्द के दासों के

प्रकाश विशेष के रूप में ही जानते हैं।

Those who are the servants of Lord Kṛṣṇa in the mellow of servitorship (*dāsya-rasa*) understand the spiritual master to be the manifestation or expansion (*prakāśa*) of the servants of Śrī Nanda Mahārāja such as Raktaka and Patraka.

श्रीगुरुपादपद्म आश्रयजातीय ब्रह्मवस्तु, आश्रयवस्तु हैं।

Śrī Guru-pāda-padma is *āśraya-jātīya brahma-vastu* (the spiritual receptacle of love who gives enjoyment to Kṛṣṇa) and *āśraya-vastu* (receptacle of love for Śrī Kṛṣṇa).

कोई यह नहीं समझे कि वे मूल आश्रयविग्रह अथवा विषयविग्रह हैं।

koī yaha nahīṃ samajhe ki ve mūla āśraya-vigraha athavā viṣaya-vigraha haiṃ.

No one should think that that he (the spiritual master) is (1) Śrīmatī Rādhārāṇī who is the *mūla-āśraya-vigraha* (original manifestation of the Lord of whom we take shelter or the receptacle of love for Kṛṣṇa) or (2) Śrī Kṛṣṇa who is *viṣaya-vigraha* (the object of the devotee's *prema*).

अनर्थयुक्त अवस्था में और अनर्थमुक्त अवस्था में गुरुदेव में दर्शनभेद है।

anarthayukta avasthā meṃ aura anarthamukta avasthā meṃ gurudeva meṃ darśanabheda hai.

There is a difference in the *darśana* (direct vision) of Gurudeva in a *anartha*-ridden state and a *anartha*-free state.

Alternative: There is a great deal of difference in how the devotee sees the spiritual master in the state when the devotee is full of unwanted habits (*anarthas*) and the state when he is free from the unwanted habits (*anarthas*).]

Further Explanation: There is a significant difference in how a devotee perceives the spiritual master when the devotee is full of unwanted habits (*anarthas*) compared to when he is free from those habits (*anarthas*).]

श्रीगुरुदेव जिस प्रकार सेवा करते हैं, उनके आश्रित हमें भी उसी प्रकार सेवा करनी होगी।

The spiritual master renders service to the Divine Couple—Śrī Śrī Rādhā Kṛṣṇa, in a most loving manner. We devotees, who have taken shelter at the lotus feet of the spiritual master, must render devotional service to the Divine Couple in the same manner.

मैं एक दिशा में चल रहा हूँ और गुरुपादपद्म की इच्छा अन्य प्रकार है, तो ऐसा होने पर वह अभक्ति हो गयी।

If I perform devotional service according to my own whims while the spiritual master's desires are different, then our activities will be considered non-devotional pursuits.

विश्व दर्शन ही संसार है।

Viśva-darśana (Seeing the material world as the object of one's enjoyment) is indeed *saṁsāra* (material existence; the cycle of repeated birth and death).

समदर्शी श्रीगुरुदेव की कृपा से यह कुदर्शन नष्ट होगा।

sama-darśī śrī-gurudeva kī kṛpā se yaha kudarśana naṣṭa hogā.

This *ku-darśana* [the propensity to see the material world as an object for one's personal enjoyment and not as an object for Lord Kṛṣṇa's service] will destroyed by the mercy of Śrī Gurudeva, who is *sama-darśī.* [The word *sama-darśī* means to see that Bhagavān's *taṭasthā-śakti* (marginal potency) manifests as the *jīvātmā* (minute living entity) with a specific *svarūpa* (intrinsic form and nature) in every material body. Only such seers of the self (*ātma-darśī*) are known as *sama-darśī*.].

Edited: This *ku-darśana*, which refers to the propensity to see the material world as an object for one's personal enjoyment rather than as an opportunity for Lord Kṛṣṇa's service, will be destroyed by the mercy of Śrī Gurudeva, who is *sama-darśī*. [The term *sama-darśī* means to recognize that Bhagavān's *taṭasthā-śakti* (marginal potency) manifests as the *jīvātmā* (minute living entity) with a specific *svarūpa* (intrinsic form and nature) in every material body. Only those who are seers of the self (*ātma-darśī*) are known as *sama-darśī*.]

भक्तगण जगत को कृष्णभोग्य अर्थात् कृष्ण सेवा के उपकरण के रूप में जानते हैं।

Devotees regards the material world to be the object of Lord Kṛṣṇa's enjoyment (*kṛṣṇa-bhogya*) or as an instrument for Lord Kṛṣṇa's service (*kṛṣṇa-sevā-upakaraṇa*).

Edited: Devotees regard the material world as either the object of Lord Kṛṣṇa's enjoyment (*kṛṣṇa-bhogya*) or as an instrument for Lord Kṛṣṇa's service (*kṛṣṇa-sevā-upakaraṇa*).

हृदय जब विषय वासनाओं से रहित हो जाता है, तब परम असुविधाएँ भी सुविधा प्रतीत होती हैं, सबकुछ कृष्ण कृपा के रूप में ही अनुभव होता है।

When the heart becomes free from worldly desires for sense gratification, even the greatest difficulties seem like comforts, and everything is experienced as Lord Kṛṣṇa's mercy.

श्रीगुरुदेव मेरे समान ही नाना प्रकार की असम्पूर्णता और दोषों से युक्त हैं अथवा वे दुष्ट और अनभिज्ञ मर्त्य जीव हैं अथवा मेरी अपेक्षा वे किञ्चित श्रेष्ठ हैं—यह सब विचार आने पर मैं विश्व का प्रभु हो गया और मेरा सर्वनाश हो गया।

One may incorrectly think that (1) Śrī Gurudeva is like oneself, having many imperfections and faults, or that (2) he is a wicked and ignorant mortal being, or that (3) he is only slightly superior that myself. When such thoughts arise in one's heart, one believes oneself to be the Lord of the universe, which ultimately leads to complete destruction.

गुरु जीवनस्वरूप हैं।

The spiritual master is the embodiment of one's very life.

सद्गुरुपदाश्रय नहीं होने पर अधोक्षज विचार नहीं आयेगा, प्रत्यक्ष, परोक्ष अथवा अपरोक्ष तक ही गति होगी।

If one does not accept *sad-guru-padāśraya* (shelter of the lotus feet of the bona fide spiritual master), one cannot understand *adhokṣaja-jñāna* (knowledge pertaining to Bhagavān, who is beyond material sense perception, cannot be perceived by impure material senses, and resides in Vaikuṇṭha). Without such shelter, one can only realize *pratyakṣa-jñāna* (knowledge related to direct sense perception of gross phenomena), *parokṣa-jñāna* (knowledge pertaining to Svarga or heavenly planets), and *aparokṣa-jñāna* (knowledge related to the unmanifest, formless Brahman).

जो बद्ध, हमारी भोग्य, दृश्य, चिन्तनीय, आघ्राणीय है, वही माया है।

That which is bound, which is the object of our enjoyment, which is visible, which we can think of, which we can smell, is *māyā*.

Alternative: Whatever is bound, our object of enjoyment, visible, thinkable, and smellable—that is *māyā*.

हमें अधोक्षज भगवान का सेवक स्वयं होना होगा। पुरोहित अथवा प्रतिनिधि के द्वारा सेवाकार्य नहीं होता।

We have to become the servants of the *Adhokṣaja* Bhagavān ourselves.

One cannot render devotional service to Bhagavān by delegating it to a priest or a representative.

प्रश्न—भक्ति और अभक्ति क्या है? (Page 90) (Reviewed)

उत्तर—भक्ति अर्थात् साधनभक्ति, भावभक्ति और प्रेम भक्ति। अभक्ति अर्थात् अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान, योग एवं उनके मिश्रण से असंख्य प्रकार की हरिविमुखता।

Question–What is devotional service (*bhakti*) and lack of devotional service (*abhakti*)? (Page 90) (Reviewed)

Answer–Devotional Service (*bhakti*) means *sādhana-bhakti, bhāva-bhakti* and *prema-bhakti.* Non-devotional service (*abhakti*) means *anya-abhilāṣa* (extraneous desires, anything other than the desire to satisfy Lord Kṛṣṇa), *karma, jñāna, yoga* and innumerable types of aversion to Lord Viṣṇu created from the combination of these.

Notes:

(1) *Sādhana-bhakti*: *Sādhana-bhakti* is the practice of *śuddha-bhakti* which is performed under the guidance of *śuddha-bhaktas* after one has received initiation and instructions from a *sad-guru*.

(2) *Bhāva-bhakti*: the initial stage of perfection in devotion. A stage of *bhakti* in which *śuddha-sattva*, the essence of the Lord's internal potency consisting of spiritual knowledge and bliss, is transmitted into the heart of the practicing devotee, from the heart of the Lord's eternal associates. It is like a ray of the sun of *prema* and it softens the heart by various tastes. It is the first sprout of pure love of God (*prema*), and it is also known as *rati.* This is the eight stage of the creeper of devotion.

प्रश्न—ब्रजवासी कौन हैं? (Page 91) (Reviewed)

Question—Who are the *vraja-vāsīs*? (Page 91)

उत्तर—ब्रज धातु का अर्थ है—चलना।

Answer—The meaning of the verbal root *vraja* means to move.

जो सर्वदा कृष्णेन्द्रिय तर्पण के पथ पर चलते हैं, वे ही ब्रजवासी हैं।

Those who always walk on the path of satisfying the senses of Lord

Kṛṣṇa are are indeed the *vraja-vāsīs* (the residents of Vraja).

ब्रजवासियों के अनुगत होकर श्रीनाम का भजन करना होगा अन्यथा माया का संसार हो जायेगा।

We will have to chant the holy name by being under the guidance of the residents of Vraja (*vraja-vāsīs*) otherwise our daily activities will be affected by the illusory potency of Bhagavān.

Edited: We must chant the holy name under the guidance of the residents of Vraja (*vraja-vāsīs*); otherwise, our daily activities will be influenced by the illusory potency of Bhagavān.

ब्रजवासियों के आनुगत्य में कृष्ण-संसार प्राप्त होगा।

By being under the guidance of the residents of Vraja, we will have to perform our everyday activities with the sole intention of satisfying Lord Kṛṣṇa.

Edited: Under the guidance of the residents of Vraja, we must perform our everyday activities with the sole intention of satisfying Lord Kṛṣṇa.

यदि सब समय ही कृष्ण का भजन नहीं होगा, तो ऐसा होने पर ब्रजवासियों के आनुगत्य से विच्युत होना पड़ेगा।

If we do not render devotional service to Lord Kṛṣṇa at all the times, then we will have to lose the invaluable guidance of the residents of Vraja.

Edited: If we do not render devotional service to Lord Kṛṣṇa at all times, we will lose the invaluable guidance of the residents of Vraja.

मेरे श्रीगुरुपादपद्म, श्रीराधारानी, श्रीनन्द-यशोदा, श्रीदाम-सुदाम आदि सभी ब्रजवासी हैं।

My revered spiritual master (Śrī Guru-pāda-padma), Śrī Rādhārāṇī, Śrī Nanda-Yaśodā and Śrīdāma-Sudāma are the residents of Vraja.

प्रश्न—क्या भक्तसेवा को छोड़कर वास्तविक मंगल नहीं होता? (Page 91) (Reviewed)

Question—Will one not receive actual auspiciousness unless one renders service to the devotees? (Page 91)

उत्तर—जो भगवान की सेवा करते हैं, वे ही भक्त हैं और जो सेव्य होकर सेवक की सेवा ग्रहण करते हैं, वे भक्तों के एकमात्र सेव्य-भगवान हैं।

Those who render service to Bhagavān Śrī Kṛṣṇa are known as devotees. Śrī Kṛṣṇa accepts the service of the devotees by becoming the object of their

service (*sevya*). Therefore Śrī Kṛṣṇa alone is *sevya* Bhagavān (the Supreme Personality of Godhead, fit to accept the service of the devotees).

भगवद्भक्तगण भगवान के समान ही पूज्य हैं।

The devotees of Bhagavān are equally worshipable as Bhagavān.

पूजा दो प्रकार की होती है—सेव्य भगवान की पूजा और सेवक भगवान की पूजा।

pūjā do prakāra kī hotī hai—sevya bhagavāna kī pūjā aura sevaka bhagavāna kī pūjā.

Worship is two types— (1) worship of *sevya* Bhagavān (the Supreme Personality of Godhead Śrī Kṛṣṇa who is the object of service) and (2) worship of *sevaka* Bhagavān (Śrī Gurudeva who is the Supreme Personality of Servitorship and the best of the servants of Lord Kṛṣṇa).

यह दोनों ही ईश्वर वस्तु हैं।

Both of these are *īśvara-vastu* (the Supreme Personalities and worshipable masters of the devotees).

भगवान सूर्य सदृश और भक्त अथवा गुरु आलोक स्वरूप हैं।

Bhagavān is like the Sun and the devotee or the spiritual master is like the light.

सेव्य और सेवक, भक्त और भगवान से परस्पर अविच्छेद्य-सम्बन्ध विशिष्ट हैं।

The devotees are servitors (*sevaka*) of Bhagavān and Bhagavān is the object of service (*sevya*) for the devotees. They share a mutual relationship which is eternal and unbreakable under any circumstances.

भक्त-भगवान पृथक पदार्थ नहीं हैं।

The devotee and Bhagavān are not two separate objects.

भगवान पूर्ण वस्तु हैं।

Bhagavān is the the complete conscious entity (*pūrṇa-vastu*).

जिनमें भगवद्भक्ति विद्यमान है, वे भक्त हैं।

The persons who are endowed with the propensity for rendering loving devotional service (*bhagavad-bhakti*) for Bhagavān are known as devotees (*bhaktas*).

भक्त कहने पर भजनीय वस्तु संश्लिष्ट रहती है।

When we address a certain person as a devotee of Lord Kṛṣṇa, then it is to be understood that he must be loving connected to the supreme object of devotional service (*bhajanīya-vastu*) without a dobut.

जिस प्रकार पुत्र कहने पर पिता निश्चय ही विद्यमान रहेंगे।

When we address a certain person as a son, it must be understood that he must have a father who gave him birth.

भक्ति, भक्त और भगवान—यह तीन अविच्छेद्यसम्बन्ध में संश्लिष्ट हैं।

Devotional service of Lord Kṛṣṇa (*bhakti*), devotee of Lord Kṛṣṇa (*bhakta*) and Bhagavān Śrī Kṛṣṇa—these three bear a close and unbreakable relationship with each other.

भगवद्भक्त कृष्ण के अधीन होते हैं और कृष्ण भक्तों के अधीन रहते हैं।

The devotees of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa are under the loving control of Him, and Bhagavān Śrī Kṛṣṇa is also controlled by the love of His devotees.

ये परस्पर अभिन्न, अंग-अंगी भाव युक्त हैं; इसीलिये एक-को दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता।

They are non-different from each other. Bhagavān Śrī Kṛṣṇa is the whole (*aṅgī* or body) and the devotee of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa is His part and parcel (*aṅga,* limb). That is why one cannot be separated from the other. The devotee cannot be separated from Bhagavān Śrī Kṛṣṇa and vice versa.

भक्त के बिना भगवान रूपी कोई वास्तव वस्तु नहीं रहती।

No *vāstava-vastu* (any really existing or abiding substance) called Bhagavān Śrī Kṛṣṇa can exist without the presence of the devotees of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa

भक्तपूजा के बिना भगवान की पूजा का कोई अर्थ ही नहीं है।

One's worship of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa does not carry any significance unless one worships the devotees of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa also.

भक्त अथवा सेवक के बिना सेव्य का विचार आंशिक विचारमात्र होगा।

If we focus on Bhagavān Śrī Kṛṣṇa only who is the object of service (*sevya*) and ignore His devotees (*bhaktas*) and servitors (*sevakas*), then such a consideration will be partial and lame in nature.

भक्त अथवा सेवक को भगवान अथवा सेव्य से पृथक करने पर भक्त को भजनवृत्ति रहित करके उसे असम्पूर्ण अथवा स्वतंत्र करके दूर निक्षेप करना हुआ।

When we attempt to separate the devotees (*bhaktas*) or servitors (*sevakas*) of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa, who is the object of service (*sevya*), from Him, we are actually depriving the devotees of their natural, constitutional inherent propensity to render loving devotional service to Bhagavān (*bhajana-vṛtti*). Thus

we are rendering the devotees incomplete and independent; and discarding them far away from Bhagavān Śrī Kṛṣṇa.

इस प्रकार का कुविचार केवल अभक्तों में ही दिखलायी पड़ता है।

This type of evil thinking and gross misconception is seen only in the case of nondevotees.

भगवद्भक्त केवल भगवान की सेवा करते हैं, जो भगवान की नित्यसेवा करते हैं, भगवद्भक्त उनकी भी सेवा करते हैं।

The devotees of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa serve only Him. Moreover, the devotees of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa also serve those great personalities who always serve Bhagavān lovingly.

भगवद् शब्द से नाम-रूप-गुण-परिकर-लीला परिलक्षित होते हैं।

The term *Bhagavad* encompasses the *nāma* (holy name), *rūpa* (form), *guṇa* (qualities), *parikara* (associates), and *līlā* (pastimes) of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa.

भक्त सेवा के बिना भगवान की सेवा नहीं होती;

One can never Bhagavān Śrī Kṛṣṇa unless one renders loving devotional service to His intimate devotees first.

सेव्य भगवान की पूजा बहुत समय सेव्य के निकट नहीं भी पहुँच सकती;

Many times direct worship of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa who is object of service (*sevya*) for all the devotees cannot help one reach Him.

किन्तु सेवक-भगवान की पूजा के द्वारा जो सेव्य भगवान की पूजा होती है, वह पूजा अव्यर्थ होती है,

However when one worships Śrī Kṛṣṇa, the ultimate object of service, (*sevya* Bhagavān) after first worshiping His loving servitor, the spiritual master, who is also known as servitor Godhead (*sevaka* Bhagavān), one's worship never goes in vain and becomes successful without a tinge of doubt.

वह पूजा भगवान के निकट पहुँचे बिना नहीं रह सकती

When one first worships the spiritual master and then worships Lord Kṛṣṇa, that worship will inevitably reach the lotus feet of Śrī Kṛṣṇa.

क्योंकि वहाँ समस्त भार 'भक्त' ग्रहण करके अपने नित्य सेव्य के निकट पहुँचा देते हैं।

Because in this case, the pure devotees of Lord Kṛṣṇa accept the burden of transporting that worship to Śrī Kṛṣṇa—the object of eternal devotional

service.

प्रश्न—श्रीगुरुपादपद्म का स्वरूप क्या है? (Page 92)

praśna—śrī-guru-pāda-padma kā svarūpa kyā hai? (Page 92)

Question—What is the nature (*svarūpa*) of Śrī Guru-pāda-padma? (Page 92)

उत्तर—श्रीगुरुदेव साक्षात् श्रीहरि हैं किन्तु यह कहने का अर्थ यह नहीं है कि वे भोक्ता भगवान हैं।

Answer—Śrī Gurudeva is Śrī Hari, but this does not mean that he is *bhoktā-bhagavān* (the Supreme Enjoyer Śrī Kṛṣṇa).

श्रीगुरुदेव सेवक भगवान अथवा आश्रयविग्रह हैं और श्रीकृष्ण भोक्ता भगवान अथवा विषय विग्रह हैं।

Śrī Gurudeva is *sevaka*-Bhagavān or *āśraya-vigraha* and Śrī Kṛṣṇa is *bhoktā* Bhagavān or *viṣaya-vigraha*.

श्रीगुरुदेव कृष्ण होकर भी कृष्णप्रेष्ठ हैं।

Although Śrī Gurudeva is Kṛṣṇa, he is also *kṛṣṇa-preṣṭha* (dear to Lord Kṛṣṇa).

चिद्विलास का विषय भगवान हैं और चिद्विलास के आश्रय में जो श्रेष्ठतम् हैं, वही श्रीगुरुपादपद्म हैं।

Bhagavān is the *viṣaya* (object) of *cid-vilāsa* (transcendental pleasure-pastimes) and Śrī Guru-pāda-padma is the most excellent shelter (*āśraya*) of *cid-vilāsa* (transcendental pleasure-pastimes).

Edited: Bhagavān is the *viṣaya* (object) of *cid-vilāsa* (transcendental pleasure pastimes), and *Śrī Guru-pāda-padma* is the most excellent *āśraya* (shelter) of *cid-vilāsa* (transcendental pleasure pastimes).

एकमात्र मुकुन्दप्रेष्ठ श्रीगुरुपादपद्म के अतिरिक्त इस जगत में भगवान का प्रियतम और कोई नहीं है।

None is as dear to Bhagavān than Śrī Guru-pāda-padma, who is *mukunda-preṣṭha* (His most dear associate).

गुरु दस-पाँच नहीं, एक हैं।

Guru is not ten or five, but one.

गुरु कृष्ण के परिकर, पार्षद अथवा कृष्णसंगी हैं।

The spiritual master is the associate of Lord Kṛṣṇa (*parikara*, *pārṣada* or *kṛṣṇa-saṅgī*).

परिकर के बिना भगवान की भगवत्ता स्वीकृत नहीं होती।

Without the entourage (*parikaras*), Bhagavān's godliness or the quality of being Bhagavān (*bhagavattā*) is not accepted.

In the absence of the eternal associates of Lord Kṛṣṇa (*parikaras*), one cannot accept Bhagavān's Godhood or Bhagavān's quality of being the Supreme Personality of Godhead.

परिकर-वैशिष्ट्य के बिना भगवद्-विद्रोह उपस्थित होता है।

parikara-vaiśiṣṭya ke binā bhagavad-vidroha upasthita hotā hai.

Unless one accepts the unique characteristics of Bhagavān's eternal associates (*parikara-vaiśiṣṭya*), one will be indeed committing a rebellion or revolt against Bhagavān.

श्रीगुरुपादपद्म भगवद्वस्तु से पृथक वस्तु नहीं हैं।

Śrī Guru-pāda-padma is not at all different from *bhagavad-vastu* (the absolute truth concerning Śrī Bhagavān).

गुरुपादपद्म एवं गुरुवन्द्य भगवद्-पादपद्म एक होने पर भी इनमें परस्पर वैशिष्ट्य विद्यमान है।

gurupādapadma evaṃ guruvandya bhagavad-pādapadma eka hone para bhī inameṃ paraspara vaiśiṣṭya vidyamāna hai.

The lotus feet of the spiritual master (*guru-pāda-padma*) are non-different from the lotus feet of Bhagavān (*bhagavad-pāda-padma*), which are worshipable and venerable to the spiritual master (*guru-vandya*). Nevertheless, each has its own unique characteristics (*paraspara-vaiśiṣṭya*).

वन्द्य, वन्दनकारी से eliminated (पृथक) नहीं हो सकते।

vandya, vandanakārī se eliminated (pṛthaka) nahīṃ ho sakate.

One cannot eliminate the personality offering veneration and worship (*vandana-kārī*) from the Supreme Personality who is being honored and worshiped (*vandya*).

गुरु का गुरुत्व नश्वर है अथवा गुरुपादपद्म उपायमात्र हैं, उपेय नहीं हैं अथवा नित्य सेव्य नहीं हैं, यह अभक्तों का विचार है।

The nondevotees have the following misconceptions: (1) The greatness or venerableness (*gurutva*) of the spiritual master as the bestower transcendental knowledge and illumination of the spiritual master is temporary, perishable, transitory, evanescent or transient. (2) *Guru-pāda-padma* is only the means (*upāya*) of attaining the spiritual perfection. However he is not the the object to be obtained (*upeya*). (3) *Guru-pāda-padma* is not spiritual object worthy of eternal worship and reverence.

भगवद्वस्तु श्रीगुरुदेव के प्रति इस प्रकार की जड़बुद्धि अथवा अनित्य बुद्धि होने पर नरकगामी होना पड़ेगा।

One will certainly have to glide down to hell if one regards the spiritual master who is *bhagavad-vastu* (the absolute truth concerning Śrī Bhagavān) to be a dully material object or temporary (impermanent).

कृष्ण ही कृष्ण को प्रदान कर सकते हैं।

Lord Kṛṣṇa alone can bestow Himself to a devotee.

गुरुदेव ही कृष्ण को प्रदान करते हैं।

Gurudeva alone can bestow Lord Kṛṣṇa upon the devotees.

कृष्णप्रदाता गुरुपादपद्म गोलोक-वृन्दावन में नित्य अवस्थित हैं।

kṛṣṇa-pradātā gurupādapadma goloka-vṛndāvana meṃ nitya avasthita haiṃ.

Guru-pāda-padma who is the bestower of Lord Kṛṣṇa upon the deovtees is eternally present in Goloka Vṛndāvana.

वे काल से पूर्व भी थे और बाद में भी चिरदिन रहेंगे।

He existed even before the material time factor (*kāla*) existed and will continue to exist eternally even of the devotee reaches the spiritual world where the material time factor is conspicuous by its absence.

जो नित्यकाल गुरुपादपद्म की सेवा नहीं करते, वे गुरुदेव नहीं हैं।

One who does not render service to one's Guru-pāda-padma eternally is not a spiritual master in reality.

गुरुदेव स्वयं आचरण करके गुरुसेवा और कृष्णसेवा की शिक्षा प्रदान करते हैं।

Gurudeva himself sets an example by teaching the service of the Guru

and Kṛṣṇa through his own conduct.

The spiritual master personally renders unalloyed devotional service to one's spiritual master and Lord Kṛṣṇa, and thus teaches the devotees by one's personal example that one cannot forsake the devotional service to the spiritual master and Lord Kṛṣṇa during the stage of spiritual practice and even after attaining the stage of spiritual perfection.

जो जीवन-मरण, अनन्तकाल के लिये कृष्णसेवा करते हैं, वही गुरुदेव हैं।

He who serves Lord Kṛṣṇa for his entire life, through birth and death, for eternity, he is Gurudeva.

The great personality called Śrī Gurudeva keeps on rendering devotional service to Lord Kṛṣṇa eternally, while living in this material world and even after enacting the pastime of leaving this material world.

गुरु का प्रत्येक कार्य भगवान की पूर्ण सेवामय होता है।

Every activity of the spiritual master is the complete embodiment of the unalloyed loving devotional service to Bhagavān.

भगवान होना गुरु का कार्य नहीं है, भगवद् द्रोही होना नितान्त लघु का कार्य है।

Being Bhagavān is not the Guru's job; being offensive to Bhagavān is an extremely trivial task.

It is not at the duty of the spiritual master to proclaim himself to be Bhagavān. Such a foolish act of proclaiming oneself to be Bhagavān is the work of a despicable insignificant (*laghu*) person who is a great offender to the lotus feet of Bhagavān.

श्रीगुरुदेव कदापि अवैष्णव नहीं हो सकते।

The spiritual master can never become a nondevotee.

वे भगवद्-अनुभूति विशिष्ट एवं सेवा के तारतम्य के निर्देश में परमबुद्धिमान् होते हैं।

He is endowed with a special realization of Bhagavān and he very intelligent and qualified in advising his disciples about the various levels and gradations of devotional service to Bhagavān.

यदि भाग्यक्रम से ऐसे महापुरुष गुरु रूप में प्राप्त हो जायें, तभी हमारा मंगल होगा।

If out of great good fortune, if we receive such a great personality as our spiritual master, then we will certainly attain auspiciousness.

जो गुरुदेव हमारे भोग की वस्तुओं का अनुमोदन करते हैं, वे गुरु नहीं—मोसाहेब (खुशामद करनेवाला) हैं।

The person who approves or sanctions our indulgence in the objects of sense gratification is not worthy of being addressed as a spiritual master. Rather he is a flatterer.

जो गुरु शिष्य का मंगल नहीं चाहता, वह शिष्य के सब विचारों का अनुमोदन करता है।

The spiritual master does not desire auspiciousness for one's disciple will encourage and approve all the disciples ideas even if they are very detrimental to the spiritual progress of the disciple.

तुम जो कर रहे हो, वही ठीक है—इस प्रकार की बात कहना गुरु का कार्य नहीं है, यह मोसाहेब का कार्य है।

"O dear disciple! Whatever you do is just fine. Keep on doing what you feel to be right." Speaking such words is not the characteristic of a genuine spiritual master. Rather such an act of approving and condoning the illicit activities of the disciple is the work of a flatterer.

गुरु शिष्य का शिष्य अथवा जीव का मोसाहेब नहीं है,

The spiritual master is not the disciple of the disciple. In other words, he is not a flatterer or blind approver any reckless or illicit action of the living entity.

वे भगवान के मोसाहेब हो सकते हैं क्योंकि भगवान पूर्ण वस्तु, सच्चिदानन्द वस्तु हैं, उनमें किसी प्रकार की हेयता नहीं है।

He can be a flatterer of Bhagavān because Bhagavān is the complete conscious entity (*pūrṇa-vastu*) the embodiment of knowledge, bliss and

eternity (*sac-cid-ānanda*). He is devoid of material defects such as any type of painful misfortune or calamity. In other words, He is the formidable nemesis of all defects.

श्रीगुरुदेव नित्य अनर्थमुक्त पूर्ण अर्थ हैं।

Śrī Gurudeva is eternally free from all unwanted desires, activities or habits that impede one's spiritual advancement (*anarthas*) and bestower of love of Godhead which is the ultimate and complete goal of life (*artha*).

भगवान की शक्ति और उनके स्वरूप के विषय में अभिज्ञान प्रदान करना ही गुरु का कार्य है।

The Guru's role is to impart understanding about the Lord's power and His nature.

It is the primary duty of the spiritual master to bestow the direct perception and realization of Bhagavān's multifarious potencies and His eternal nature (*svarūpa*) upon his disciples.

हमारे मंगल के लिये गुरुवर्ग इस प्रपंच में अवतीर्ण होते हैं।

The Guru class (*guru-varga*) descends into this material world for our auspiciousness.

All the spiritual masters in the transcendental Bhāgavata *paramparā* descend to this material world made of five elements (earth, water, fire, air and ether) from the spiritual sky in order to bestow auspiciousness on all of us.

हमारे गुरुवर्ग नित्यसिद्ध हैं; वे साधनसिद्धमात्र नहीं हैं।

hamāre guru-varga nitya-siddha haiṃ; ve sādhana-siddha-mātra nahīṃ haiṃ.

Our spiritual masters (*guru-varga*) are eternally perfected associates of Bhagavān (*nitya-siddha*). There are not merely *sādhana-siddha* — the personalities who attained spiritual perfection (*siddhi*) by their intense practice of devotional service.

गुरुसेवा नहीं करने पर हम दाम्भिक हो जायेंगे, तृणादपि सुनीच नहीं हो पायेंगे, कृष्णदास के अभिमान में प्रतिष्ठित नहीं हो पायेंगे।

If we do not render devotional service to our spiritual master, then the following will happen: (1) We will become hypocrites and pretenders who feign to be religious despite being staunchly irreligious in nature, (2) we will not be able to become more humble than a blade of grass, and (3) we wilḷ be able to attain true ego and conception of being the menial service of Lord Kṛṣṇa.

सद्‌गुरु प्राप्त करके भी गुरुदक्षिणा के अभाव में हमारा मंगल नहीं हो रहा है।

sadguru prāpta karake bhī gurudakṣiṇā ke abhāva meṃ hamārā maṃgala nahīṃ ho rahā hai.

We have attained the shelter of the lotus feet of the genuine spiritual master. However we have not offered him *guru-dakṣiṇā* — the sacrifice of one's material possessions, false ego and other misconceptions as a token of our gratitude towards him. Therefore we are unable to attain auspiciousness.

श्रीगुरुपादपद्म का आश्रय करके गुरुदक्षिणा प्रदान नहीं करना ही विश्वासघाती का कार्य है।

Despite taking shelter at the lotus feet of the spiritual master, if one fails sacrifice all of one's material possessions and false ego as *guru-dakṣiṇā* (gift to the spiritual master), then such a person if fit to be regarded as an ungrateful wretch who has betrayed the faith that spiritual master had reposed in him.

हम गुरु के कहाँ हो पा रहे हैं?

Are we trying to dedicate ourselves to the spiritual master entirely?

गुरु का नहीं होने पर गुरुसेवा किस प्रकार होगी?

If we do not belong to the spiritual master (If we do not dedicate ourselves to the spiritual master entirely), how can we render service unto him?

गुरु का होकर गुरु की विश्रम्भ सेवा के फलस्वरूप हमारे सभी कुसंस्कार और अनर्थ विदूरित होंगे।

By dedicating ourselves to the spiritual master and serving him with intimately with a sense of possessiveness, all our previous bad impressions on the heart (*ku-saṁskāras*) and unwanted habits and desires (*anarthas*) will be eradicated.

एकमात्र गुरुसेवा के द्वारा ही मंगल प्राप्त होगा। गुरुसेवा के प्रति उदासीन होने पर कदापि मंगल नहीं होगा।

Auspiciousness will be attained only by rendering loving devotional service to the spiritual master. If we are indifferent to serving the spiritual master, there will never be any auspiciousness.

श्रीगुरुदेव नित्य पूज्य अथवा नित्यसेव्य वस्तु होकर भी भगवद्सेवा के मूर्त्त विग्रह हैं।

śrīgurudeva nitya pūjya athavā nityasevya vastu hokara bhī bhagavadsevā ke mūrtta vigraha haiṃ.

Śrī Gurudeva, being eternally worshipable and eternally servable, is the embodied form of service to the Lord.

Alternative: Śrī Gurudeva is an object of eternal worship (*nitya-pūjya*) or an object of eternal service (*nitya-sevya*), nevertheless he is the personified manifestation (embodiment) (*mūrtta-vigraha*) of the loving devotional service to Bhagavān (*bhagavad-sevā*).

श्रीगुरुदेव सेवाविग्रह, भक्तिविग्रह अथवा मूर्त्तिमान् भक्ति हैं।

śrī-gurudeva sevā-vigraha, bhakti-vigraha athavā mūrttimān bhakti haiṃ.

Śrī Gurudeva is the embodiment of loving service to Lord Kṛṣṇa (*sevā-vigraha*), the embodiment of devotion to Lord Kṛṣṇa (*bhakti-vigraha*), or the personification of devotional service (*mūrtimān-bhakti*).

गुरु कृष्णमय, निरन्तर कृष्णचिन्ता में विभोर रहते हैं श्रीगुरुदेव के नाम, रूप, गुण, लीला सभी सेवामय हैं।

The Guru is immersed in constant contemplation of Lord Kṛṣṇa; Śrī Gurudeva's name, form, qualities, and pastimes are all dedicated to service.

Alternative: The Guru is *kṛṣṇa-maya* (deeply absorbed in a singular thought of pleasing Lord Kṛṣṇa). He is immersed in constant contemplation of Lord Kṛṣṇa (*kṛṣṇa-cintā*). Śrī Gurudeva's name (*nāma*), form (*rūpa*), qualities (*guṇa*), and pastimes (*līlā*) are all the embodiment of devotional service to Lord Kṛṣṇa.

सेव्य भगवान की सेवा ही उनकी सत्ता है, सेवा ही उनका स्वरूप, सेवा ही उनका गुण, सेवा ही उनकी लीला है।

Service to the worshipable Lord is his very essence and existence (*sattā*), service is his nature (*svarūpa*), service is his quality (*guṇa*), and service is his divine play or pastime (*līlā*).

वे प्रेमसेवा में सुदक्ष एवं प्रेमभक्ति के शिक्षक हैं।

He is very expert and capable in the service of love (*prema-sevā*) and a teacher of loving devotional service (*prema-bhakti*).

श्रीगुरुदेव भवपार के कर्णधार अथवा नाविक, नामप्रेम-प्रदाता और भक्तिपथप्रदर्शक हैं।

Śrī Gurudeva is the helmsman or navigator (*karṇadhāra*) for crossing the ocean of material existence, the giver of love through the holy name (*nāma-prema-pradātā*), and the guide on the path of devotion (*bhakti-patha-pradarśaka*).

वे नामाचार्य और सम्बन्धज्ञानाचार्य हैं।

ve *nāmācārya* aura *sambandha-jñānācārya* haiṃ.

He is the preceptor of the holy name (*nāmācārya*) and the teacher of *sambandha-jñāna* (knowledge of one's original relationship with the Lord).

प्रश्न—हमें कृष्ण का दर्शन क्यों नहीं होता? (Page 94) (Reviewed)

Question—Why do we not have the vision of Lord Kṛṣṇa? (Page 94)

Question—Why are we not be able to see Lord Kṛṣṇa? (Page 94)

उत्तर—गुरुपादपद्म का दर्शन नहीं होने पर कृष्ण का दर्शन किस प्रकार होगा?

Answer—How can we receive the vision of Lord Kṛṣṇa if we have not received the vision of the lotus feet of the Guru?

Answer—How can we see Lord Kṛṣṇa if we have not seen the lotus feet of the Guru?

गुरुदर्शन नहीं होने पर कृष्णसेवा नहीं होती, पुनः कृष्णसेवा नहीं होने पर कृष्ण दर्शन भी असम्भव है।

Without the vision of the Guru, there is no service to Lord Kṛṣṇa; and without service to Krishna, the vision of Lord Kṛṣṇa is also impossible.

Alternative: Without receiving the vision of the spiritual master, one cannot render service to Lord Kṛṣṇa; and without rendering service to Lord Kṛṣṇa, receiving the vision of Lord Kṛṣṇa is also impossible.

यदि गुरुपादपद्म के दर्शन के पश्चात् भी पुनः जगत् दर्शन अथवा योषित (स्त्री) दर्शन होता है, तो ऐसा होने पर मंगल नहीं हुआ, कृष्ण सेवा नहीं हुई, कृष्णानुभूति प्राप्त नहीं हुई।

If, even after having the vision of the lotus feet of the Guru, one still sees the material world or women with the mood of sense enjoyment, then

one has not really achieved auspiciousness, one has not rendered service to Lord Kṛṣṇa, and one has not yet attained the realization of Lord Kṛṣṇa.

यदि कोई वास्तविक रूप में गुरुपादपद्म का आश्रय करके निष्कपट रूप में गुरु-कृष्ण की सेवा करता है, तो उसे निश्चय ही कृष्ण का दर्शन प्राप्त होगा।

If someone takes genuine shelter of Śrī Guru's lotus feet and sincerely serves Guru and Lord Kṛṣṇa, then surely he will attain the vision of Lord Kṛṣṇa.

श्रवण-कीर्त्तन प्रबल रूप से करने की आवश्यकता है।

It is necessary to engage in hearing (*śravaṇa*) and chanting (*kīrtana*) strongly and consistently.

श्रवण-कीर्त्तन प्रबल होने पर भोग्य दर्शन अधिक प्रबल नहीं होगा।

When one sincerely engages in hearing and chanting the names, forms, qualities, and pastimes of Lord Kṛṣṇa, one will no longer view women, gold, wealth, and land as objects of enjoyment.

तब कृष्णभोग्या स्त्रीजाति के प्रति परमपूज्या गुरुज्ञान उदित होगा।

Then one will develop the mood that the women (members of fair sex) who are meant for Lord Kṛṣṇa's enjoyment only are most worshipable and worthy of topmost respect for oneself.

Alternative: One will then develop the understanding that women, who are meant solely for Lord Kṛṣṇa's enjoyment, are to be revered and respected above all.

गुरुकृष्ण की सेवा के फलस्वरूप भोक्ता अभिमान विदूरित होने पर भगवान के प्रति सेवा वृत्ति उदित होगी।

When the false ego of being the enjoyer is removed as a result of rendering service to the spiritual master and Bhagavān Kṛṣṇa, one will develop the mood of service to Bhagavān.

तभी कृष्ण का भली-भाँति दर्शन होगा, मैं अमुक स्त्री का पति अथवा भोक्ता हूँ, यह कुविचार और नहीं रहेगा।

Only then will one be able to see Lord Kṛṣṇa properly. The evil thought or misconception that I am the husband or the enjoyer (*bhoktā*) of a certain woman will no longer exist.

कृष्ण ही एकमात्र स्त्रीपति अथवा भोक्ता हैं और हम सभी कृष्ण के सेवक हैं, भली-भाँति यह ज्ञान नहीं होने पर हमारा मंगल किस प्रकार होगा?

Lord Kṛṣṇa is the only husband and enjoyer of all the women in the world, and we are all servants of Lord Kṛṣṇa. How can we attain auspiciousness if we do not know this well?

श्रवण-कीर्त्तन नहीं होने के कारण ही हमें कृष्ण का दर्शन नहीं होता।

We are unable to have the vision of Lord Kṛṣṇa because we do not engage in hearing and glorifying the name, form, qualities and pastimes of Lord Kṛṣṇa,

पहले आश्रय ग्रहण कर के बाद में श्रवण-कीर्त्तन करना चाहिये।

First one will have to take shelter of the spiritual master and then engage in hearing and chanting the glories of Lord Kṛṣṇa

मैं आश्रय ग्रहण करूँगा।

I shall take the shelter.

आश्रय ग्रहण नहीं करने पर किस प्रकार मंगल होगा?

How will I attain auspiciousness unless I take shelter of the lotus feet of the spiritual master.

जागतिक कथाओं में अधिक आविष्ट होने पर श्रवण नहीं होगा।

One will not be able to give aural reception to the pastimes of Lord Kṛṣṇa, if one is too much engrossed in the worldly topics.

श्रवण नहीं करने पर जीव विषय भोग के अतिरिक्त और क्या करेगा?

If the living entity does not engage in hearing about the pastimes of Lord Kṛṣṇa, then what else will he do besides indulging in sense gratification?

प्रश्न—क्या हमें भगवान की दया प्राप्त होगी? (Page 95) (Reviewed)

Question—Will we receive Bhagavān's mercy? (Page 95)

उत्तर—यदि हृदय में निष्कपट आर्त्ति हो, यदि वास्तव में ही भगवान को प्राप्त करना चाहते हो, तो ऐसा होने पर निश्चय ही भगवान की दया प्राप्त होगी किन्तु अन्य आकांक्षा रहने पर जन्म-ऐश्वर्यादि के अभिमान से सर्वनाश ही होगा।

Answer—If there is sincere eagerness free from duplicity in your heart, if you really want to attain Bhagavān, then on this happening you will certainly receive Bhagavān's mercy; but if you have any other desire, then the false ego of high or aristocratic birth and wealth will only lead to total destruction.

भगवान की इच्छा से सद्गुरु की प्राप्ति होती है।

By the desire of Bhagavān one attains a bona-fide spiritual master.

भगवान की दया प्राप्त होने पर सब सम्भव होगा।

Everything will be possible if we receive Bhagavān's mercy.

उनकी दया नहीं होने पर हमारी सैंकड़ों चेष्टाओं के द्वारा भी कुछ नहीं होगा, उनकी दया ही मुख्य वस्तु है।

Without His mercy, our hundreds of efforts will not achieve anything; His mercy is the main thing.

अन्य किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं करके निष्कपट रूप में उनकी दया प्राप्ति की इच्छा करनी होगी।

Without wishing for anything else, one must sincerely desire to receive His mercy.

निष्कपट कृपाप्रार्थी ही कृपा प्राप्त करेंगे।

Only those who are sincere seekers of grace (mercy) will receive grace (mercy).

'करुणालयस्य करुणा महती' अर्थात् दयामय, दया किये बिना रह ही नहीं सकते।

'karuṇālayasya karuṇā mahatī' arthāt dayāmaya, dayā kiye binā raha hī nahīṃ sakate.

'*Karuṇālayasya karuṇā mahatī*' means the merciful Bhagavān cannot remain without showing mercy.

हमारे द्वारा सम्पूर्ण रूप से दया प्राप्ति की इच्छा नहीं करने पर ही हमें उनकी दया की प्राप्ति नहीं होती।

We do not receive His mercy because we do not desire it completely.

We will not receive the mercy of Bhagavān only if we do not totally aspire to achieve His mercy.

जो सम्पूर्ण रूप से भगवान के शरणागत होते हैं, मायाधीश भगवान स्वयं उनकी सहायता करते हैं।

Bhagavān who is the Lord of the illusory potency (*māyā*) personally helps those who completely surrender to Him.

भगवद्सेवा साक्षात् भगवान को प्रदान करती है; भगवद्सेवा के अतिरिक्त आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता।

Devotional service to Bhagavān bestows upon us direct mercy and association of Bhagavān; without service to Bhagavān, the soul cannot attain auspiciousness.

कृष्ण हमारे एकमात्र आराध्य हैं। कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त हमारा और कोई कृत्य

नहीं है।

Lord Kṛṣṇa is our only worshipable object (*ārādhya*). We have no other duty other than rendering service to Lord Kṛṣṇa.

भगवद्सेवा अपने सुख की इच्छामात्र नहीं है, सुख की खोज भी नहीं है।

Service to Bhagavān is not merely a desire for one's own happiness, it is not even a search for happiness.

अपने सुख की खोज में लगे रहना तो अपस्वार्थपरता मात्र है।

To be engaged in the pursuit of one's own happiness is mere selfishness.

प्रश्न—भक्ति क्या है? (Page 96) (Reviewed) *

Question—What is devotional service? (Page 96)

उत्तर—कृष्णकार्य करने का नाम ही भक्ति है। अपने कार्य करने का नाम भक्ति नहीं है।

Answer—Rendering pleasing devotional service to Lord Kṛṣṇa and performing activities for the pleasure of Lord Kṛṣṇa (*kṛṣṇa-kārya*) the is called *bhakti*. Doing activities meant for satisfying one's senses and furthering one's material interests is not called *bhakti*.

विषयी होकर विषय की सेवा अथवा माया की सेवा भक्ति नहीं है।

Being a materialistic sense gratifier (*viṣayī*) and serving the objects of the senses (*viṣayas*), or serving the illusory potency of Lord Kṛṣṇa (*māyā*), is not devotional service (*bhakti*).

माया की सेवा अथवा विषय की सेवा को अर्थात् प्रभुत्व करने को भक्ति समझकर भ्रमित होने पर हित के स्थान पर अहित होगा।

If one confuses service to *māyā* (the illusory potency of Lord Kṛṣṇa) or service to the objects of the senses (*viṣayas*), or the propensity to dominate or show superiority over others, as devotional service (*bhakti*), then instead of benefiting, there will be harm.

पापी, पुण्यवान्, कर्मी, ज्ञानी, ये सब अभक्ति को लेकर समय व्यतीत कर रहे हैं। भक्ति नहीं होने पर कर्म-ज्ञानादि ही श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं।

Sinners (*Pāpī*), virtuous people (*puṇyavān*), fruitive workers (*karmīs*), mental speculators (*jñānīs*) — all of them spend their time in nondevotional activities (*abhakti*). In the absence of devotional service (*bhakti*), only fruitive activities (*karma*) and knowledge leading to impersonal liberation (*jñāna*) seem

superior.

प्रश्न—क्या गुरु के आदेश का यथायथ पालन नहीं करने पर अमंगल होता है? (Page 96) (Reviewed) *

Question—Does it lead to misfortune and inauspiciousness if the Guru's orders are not followed properly? (Page 96) *

Edited: Question: Does failing to properly follow the Guru's orders lead to misfortune and inauspiciousness? (Page 96)

उत्तर—निश्चय ही। मंगलमूर्त्ति श्रीगुरुपादपद्म के आदेश का पालन नहीं करने पर अमंगल ही होगा, जीवों की संसार वासना वर्द्धित हो जायेगी एवं मृत्यु के बाद नरक प्राप्त होगा।

Answer—Certainly. If one does not follow the instructions of Śrī Guru-pāda-padma, who is the embodiment of auspiciousness, inauspiciousness will prevail, the material desires of living beings will increase, and after death, they will attain hell.

जो गुरु के आदेश पालन नहीं करते, वे नारकी, विषयी और पक्के संसारी हैं।

Those who do not follow the order of the spiritual master are destined for residence in hell, attached to sense enjoyment, and staunchly engaged in material activities.

गुरु के आदेशों का लंघन करने वालों को शूकर-योनि की प्राप्ति होती है।

Those who transgress or disobey the orders of the spiritual master take birth in the species of stool-eating hogs.

जिनमें संसार-वासना, विषय-वासना प्रबल होती है, वे भाग्यक्रम से सद्गुरु को प्राप्त करके भी अपने प्राण देकर उनकी सेवा नहीं कर पाते, जिसके फलस्वरूप उनका विशेष मंगल नहीं होता।

Those who have strong material desires and cravings (hankerings) for sense gratification, even if they attain a bona-fide spiritual master of a great good fortune, cannot serve him wholeheartedly by sacrificing their own lives. As a result, they do not achieve special auspiciousness.

Edited: Those who have strong material desires and cravings for sense gratification, even if they attain a bona fide spiritual master through great fortune, cannot serve him wholeheartedly by sacrificing their own lives. As a result, they do not achieve true auspiciousness.

वे इस अमूल्य वस्तु का मूल्य नहीं जान पाने के कारण असार संसार को सार समझकर जन्म-जन्मान्तर तक कष्ट पाते हैं।

Not knowing the value of this priceless gift, they consider the worthless and unsubstantial material existence (*saṁsāra*) to be substantial and suffer birth after birth.

Edited: Not recognizing the value of this priceless gift, they mistakenly perceive the worthless and insubstantial material existence (*saṁsāra*) as substantial, resulting in their suffering through birth after birth.